क्या सभी धर्म समान हैं
?

मुहम्मद इक़बाल मुल्ला

विषय-सूची

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

"अल्लाह के नाम से जो अत्यन्त दयावान, बड़ा कृपाशील है।"

प्रस्तावना

हमारे देश भारत में अनेक धर्म पाए जाते हैं और उनके अनुयायी यहाँ रहते-बसते हैं। लोग कहते हैं कि "सभी धर्म सत्य हैं। कोई एक धर्म अकेले हक़ पर हो और शेष धर्म हक़ पर न हों, ऐसा नहीं है।" जहाँ तक सारे धर्मों का आदर करने की बात है उसमें किसी सन्देह की गुंजाइश नहीं है। लेकिन क्या सभी धर्म सत्य हैं यह शोध का विषय है और प्रत्येक इनसान की ज़िम्मेदारी है कि वह सत्य की खोज अवश्य करे।

क़ुरआन के अनुसार इनसानियत की शुरुआत से ही इनसानों के लिए जिस हिदायत और रहनुमाई की व्याख्या ईश्वर की ओर से की गई है, वह इस्लाम यानी ईश्वर का सम्पूर्ण आज्ञापालन है। उसे इनसानों तक पहुँचाने के लिए ईश्वर अपने पैग़म्बर (ईशदूत) भेजता रहा है। हज़रत आदम (अलैहि॰) पहले इनसान ही नहीं, पहले पैग़म्बर (ईशदूत) भी हैं। उनके बाद पैग़म्बरों और नबियों के आने का सिलसिला निरन्तर चलता रहा। यहाँ तक कि अन्तिम सन्देष्टा हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) आज से लगभग साढ़े चौदह सौ साल पहले अरबों में भेजे गए और उनपर ईश्वर की ओर से इनसानों की हिदायत के लिए क़ुरआन उतारा गया। हमारे देश भारत में भी निश्चित रूप से पैग़म्बर और नबी (अलैहि॰) आए होंगे या उनकी शिक्षाएँ पहुँची होंगी।

यह पुस्तिका वस्तुतः सभी देशवासियों के लिए लिखी गई है, ताकि वे धर्मों की वास्तविकता को जान लें और फिर सत्य-असत्य का स्वयं निर्णय कर सकें।

आशा है कि पाठकगण इस पुस्तिका से भरपूर लाभ उठाएँगे।

इस पुस्तिका की तैयारी में डॉ॰ मुहम्मद रज़ीयुल-इस्लाम नदवी, सचिव लेखन विभाग, जमाअते-इस्लामी हिन्द, मौलाना नसीम अहमद ग़ाज़ी फ़लाही, सचिव इस्लामी साहित्य ट्रस्ट, डॉ॰ मुहम्मद रफ़अत, सचिव प्रशिक्षण विभाग, जमाअते-इस्लामी हिन्द और मौलाना हफ़ीज़ रहमानी, वेल्लौर ने विशेष रुचि दिखाई और लाभकारी परामर्श दिए। मैं इन लोगों का आभारी हूँ। ईश्वर इन्हें अच्छा बदला दे। आमीन!

अल्लाह से दुआ है कि जिस मक़सद के लिए यह पुस्तिका लिखी गई है, वह पूरा हो और उसका लाभ सबको मिले।

1 मार्च, 2015 ई॰

—मुहम्मद इक़बाल मुल्ला
सचिव दावत विभाग
जमाअते-इस्लामी हिन्द
नई दिल्ली-25

'सभी धर्म समान हैं' की वास्तविकता

आमतौर पर जब धर्मों के बारे में बात-चीत होती है तो यह बात ज़रूर कही जाती है कि सभी धर्म सच्चे हैं, सभी हक़ पर हैं। लोग समझते हैं कि ऐसा सम्भव ही नहीं कि कोई एक धर्म हक़ (सत्य) पर हो और दूसरे तमाम धर्म हक़ पर न हों, असत्य पर हों। इस सिलसिले में यह बात भी कही जाती है कि धर्मों के नाम अलग-अलग ज़रूर हैं, लेकिन उन सबकी मंज़िल एक ही है। इसलिए इनमें से किसी भी रास्ते (धर्म) को अपना लिया जाए, वह मंज़िल तक पहुँच जाएगा।

जब सभी धर्म सच्चे हैं तो किसी एक धर्म को सच्चा कहना और अन्य सभी धर्मों को असत्य क़रार देना सही नहीं है। जो व्यक्ति जिस धर्म पर चल रहा है, चलता रहे और दूसरे व्यक्ति को उसकी मरज़ी और पसन्द के धर्म पर चलने दे और उसके धर्म को भी सच्चा माने और विश्वास करे कि उसके धर्म के अतिरिक्त दूसरे धर्म पर चलनेवाले भी नजात (मुक्ति) पाएँगे। इसी लिए किसी धर्म के हक़ पर होने का आग्रह करना और लोगों को उस धर्म की तरफ़ बुलाना समाज में असहमति और बिखराव पैदा करेगा। इसके नतीजे में राष्ट्रीय एकता छिन्न-भिन्न होगी, लोगों में धार्मिक उन्माद पैदा होगा और आपस में नफ़रत और दूरी बढ़ेगी।

जो लोग ऐसी विचारधारा रखते हैं, उन्होंने धर्मों के बारे में गम्भीरपूर्वक और गहराई से विचार नहीं किया। यह ज्ञान की कमी और सतही चिन्तन का नतीजा है। हाँ, यह बात निश्चित रूप से सही है कि केवल धर्म की बुनियाद पर लड़ना-झगड़ना उचित नहीं। विभिन्न धर्मों के माननेवालों के बीच इनसानियत की बुनियाद पर प्रेम, भाईचारा सम्मान और सहानुभूति होनी चाहिए। यह बात भी सही है कि एक ऐसे समाज में जहाँ एक से अधिक धर्मों के माननेवाले रहते हों, धर्म की बुनियाद पर मार-काट,

दंगा-फ़साद हमेशा विनाशकारी होता है। उनके बीच उदारता और सौहार्द का माहौल अनिवार्य रूप से होना चाहिए।

सवाल यह है कि क्या इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए 'सभी धर्म समान हैं' को स्वीकार करना ज़रूरी है, चाहे तर्क, ज्ञान, बुद्धि एवं विवेक के आधार पर कोई व्यक्ति सभी धर्मों को सही न समझता हो? हर प्रकार के पक्षपात से ऊपर उठकर दोटूक और धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन के नतीजे में जो सच्चाई सामने आती है, क्या उसको स्वीकार करना ज़रूरी नहीं है?

यहाँ यह पहलू भी अहम है कि विभिन्न धर्मों के बीच सत्य-धर्म की खोज का मक़सद यह नहीं है कि किसी एक धर्म को श्रेष्ठ और महान क़रार दिया जाए और दूसरे धर्मों को कमतर और तुच्छ समझा जाए, बल्कि सभी धर्मों के सम्मान के साथ-साथ यह मालूम किया जाए कि क्या उन सबकी बातें यथार्थपरक हैं? या केवल एक धर्म ऐसा है जो यथार्थ की कसौटी पर खरा उतरता है?

यदि तर्क, ज्ञान, बुद्धि एवं विवेक की बुनियाद पर किसी एक धर्म का हक़ (सत्य) होना साबित हो जाए तो अपनी दुनिया की कामयाबी और आख़िरत में नजात (मुक्ति) की माँग तो यही है कि इनसान उसे स्वीकार कर ले और अपनी ज़िन्दगी उसी के तहत बसर करे।

विभिन्न धर्मों के माननेवालों के बीच मधुर सम्बन्ध, भाईचारा और धार्मिक उदारता के लिए ज़रूरी है कि–

- प्रत्येक व्यक्ति को आस्था एवं धर्म के चुनाव की आज़ादी हो और इस मामले में उसपर कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती न हो।
- धर्म की बुनियाद पर किसी के साथ अन्यायपूर्ण सुलूक न किया जाए।
- अपने धर्म के अलावा दूसरे धर्मों के माननेवालों के साथ भाईचारा व उदारता अपनाई जाए।
- दूसरे धर्मों के धर्म-गुरुओं, महान विभूतियों, धार्मिक ग्रन्थों और इबादतगाहों (पूजा-स्थलों) का सम्मान किया जाए।

ध्यान देने योग्य बातें

क्या सारे धर्म हक़ (सत्य) पर हैं?

या, ईश्वर की ओर से इनसानों की हिदायत और रहनुमाई (मार्गदर्शन) के लिए एक ही धर्म है, जिसे इनसानियत की शुरुआत में ही दे दिया गया था।

यह मूल प्रश्न है, केवल बौद्धिक या दार्शनिक सवाल नहीं है। इसका ताल्लुक़ हरेक इनसान की सांसारिक सफलताओं और मरने के बाद आनेवाली ज़िन्दगी में नजात यानी मुक्ति से जुड़ा हुआ है। धर्म हर इनसान की बुनियादी और सबसे महत्वपूर्ण ज़रूरत है। इनसान की बुनियादी ज़रूरतों जैसे हवा, पानी, रौशनी, गर्मी और ज़मीन में गल्ला उगाने की क्षमता आदि को ईश्वर ने ख़ुद पूरा किया है। इससे बेहतर कोई दूसरी व्यवस्था हो ही नहीं सकती थी। इन ज़रूरतों को ईश्वर ने किसी और के या ख़ुद इनसान के हवाले नहीं किया। तो क्या ईश्वर ने इनसान की सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण ज़रूरत यानी हिदायत व मार्गदर्शन की व्यवस्था ख़ुद नहीं की होगी? क्या उसने हिदायत व मार्गदर्शन की व्यवस्था किसी इनसान या इनसानों के किसी गरोह के हवाले कर दी होगी? क्या इनसान इस पोज़ीशन में है कि वह अपने और दूसरे इनसानों के लिए कोई धर्म पेश कर सके?

मान लीजिए कि ईश्वर के दिए हुए धर्म को छोड़कर किसी ने अपने पसन्द के धर्म या पूर्वजों के धर्म पर चलते हुए अपनी पूरी ज़िन्दगी गुज़ार दी, लेकिन मौत के बाद की ज़िन्दगी में उसे पता चला कि वह ईश्वर की हिदायत व रहनुमाई से वंचित रह गया और अब उसे नाकामी और नरक की यातना का ख़तरा है, तो उस समय क्या हो सकता है? यह अपने बाप-दादा के धर्म से केवल भावात्मक और अमली जुड़ाव का मसला नहीं है, बल्कि अपनी ज़िन्दगी के बहुमूल्य और क़ीमती होने के एहसास को पाने, हक़ की राह में अध्यात्मिक तरक़्क़ी, कामयाबी और पारलौकिक जीवन में शाश्वत मुक्ति पाने का मामला है। हरेक इनसान की यह बहुत ही अहम और नाज़ुक ज़िम्मेदारी है कि वह अपनी व्यक्तिगत पसन्द और नापसन्द और अपने

पूर्वजों की मुहब्बत में किसी के धर्म पर चलते रहने को काफ़ी न समझे, बल्कि ईश्वर के भेजे हुए धर्म की तलाश करे और उसे पाने के बाद अपनी ज़िन्दगी में उसे निस्संकोच अपना ले।

इनसान आज सोच-विचार कर सकता है और अपने हित में कोई फ़ैसला कर सकता है। हक़ और सच्चाई की राह में कोई क़ुरबानी देनी पड़े, सांसारिक सुख-सुविधाओं से अस्थाई तौर पर वंचित होना पड़े तो हालात के अनुसार फ़ैसला कर सकता है। लेकिन जब मौत आ जाएगी और उसके बाद दूसरी दुनिया में आँख खुलेगी तो उसे वहाँ सोच-विचार करने या अपने हित में कोई फ़ैसला करने का अवसर ही नहीं मिलेगा। यह ज़िन्दगी एक ही बार मिली है, इसलिए आज सोच-विचार करके सही फ़ैसला लेने का बहुत ही क़ीमती और बेहतरीन मौक़ा है। इस अवसर को गंवा देना अपने आपको हलाकत व तबाही में डालना है।

पाठकों को विचार-विमर्श का आह्वान करते हुए निवेदन करना है कि यह लेख वास्तव में जीवन के सिलसिले में बुनियादी सवालों और उनके जवाबों के हवाले से धर्मों का तुलनात्मक एवं विस्तृत अध्ययन है। इनमें से किसी बात से किसी भी धर्म की तौहीन या अपमान करना लेखक का मक़सद नहीं है। लेखक तमाम धर्मों के प्रति सम्मान की भावना रखता है।

जो धर्म यह दावा करता है कि मात्र वही धर्म सच्चा है, उसके दावे को बुद्धि एवं विवेक और ज्ञान एवं तर्क की कसौटी पर जाँचना चाहिए। ईश्वर की ओर से प्रदान की गई सच्चाई को स्वीकार करना प्रत्येक व्यक्ति की सफलता और मुक्ति के लिए नितान्त आवश्यक है। बुद्धि एवं विवेक की रौशनी में यह माक़ूल और उचित रवैया हो सकता है। यह किसी भी धर्म के श्रेष्ठ एवं महान या कमतर व तुच्छ होने का मामला नहीं है।

धर्म की परिभाषा

'धर्म' को परिभाषित करने के लिए 'सभी धर्म समान हैं' को माननेवाले कुछ बुद्धिजीवियों और विद्वानों का कहना है—

- धर्म व्यक्ति का अध्यात्मिक अनुभव है।

- धर्म सत्य की खोज है।
- धर्म शाश्वत सत्य (Supreme Reality), सर्वोच्च वास्तविकता (Eternal Truth) या अन्तिम सत्य (Ultimate Reality) को पाने के लिए इनसान की कोशिश का नाम है।

इनमें से कुछ परिभाषाओं का भाव यह है कि धर्म का अस्तित्व ईश्वर की कल्पना, वह्य (प्रकाशना) का अवतरण या ईश्वरीय सन्देश को पहुँचानेवाले नबी (सन्देष्टा), रसूल और पैग़म्बर के बिना भी हो सकता है।

लेकिन सवाल यह है कि क्या ईश्वरीय मार्गदर्शन के बिना जीवन के लिए पूर्ण मार्गदर्शन मिल सकता है? क्या ऊपर दी गई परिभाषा के ज़रिए आस्था, उपासना, नैतिकता और जीवन-व्यवस्था के उसूल तय किए जा सकते हैं?

सवाल यह भी है कि ईश्वर को छोड़कर यह सब कौन करेगा? विभिन्न लोगों के अध्यात्मिक अनुभव और सत्य के खोज की कोशिशें निश्चित रूप से भिन्न-भिन्न परिणामों पर ख़त्म होंगी। उनमें सत्य और असत्य को जाँचने का मापदण्ड क्या होगा? वह कसौटी क्या है, जिसपर परखकर कोई कह सके कि यही सत्य है, इसलिए इसे स्वीकार कर लेना चाहिए।

यह एक सच्चाई है कि जिन लोगों ने भी अपने तौर पर अध्यात्मिक अनुभव प्राप्त किए हैं और सच्चाई की खोज की है उनमें अनेक विभेद और विरोधाभास पाए जाते हैं। क्या वे सब एक ही समय में सही और स्वीकार्य हो सकते हैं?

इनसानी ज़िन्दगी के लिए आस्था सुनिश्चित करना, इबादत का तरीक़ा तय करना, जीवन-व्यवस्था के उसूलों, आदेशों एवं नियमों को प्रतिपादित करना इनसानों के लिए असम्भव है। इनसानों ने मानव इतिहास में ऐसे बहुत-से प्रयास किए हैं, मगर हमेशा नाकाम रहे हैं। इसकी सबसे बड़ी दलील (तर्क) यह है कि इनसानों ने अपनी सफलता और मुक्ति के लिए सोच एवं व्यवहार के अनगिनत रास्ते बना लिए हैं।

उपरोक्त शब्दावलियों के ज़रिए धर्म का जो तसव्वुर सामने आता है

और उसपर चलनेवाले लोगों की ज़िन्दगियों को देखने से जो पता चलता है वह यह है—

धर्म व्यक्तिगत जीवन के सीमित दायरे में ईश्वर का स्मरण, पूजा-पाठ, उपासना की कुछ रस्में और नैतिक शिक्षाओं पर अमल करने का नाम है। व्यक्तिगत जीवन के शेष विस्तृत क्षेत्र में और सामाजिक जीवन में, जहाँ ईश्वर की और उसकी शिक्षाओं और मार्गदर्शन की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है, वहाँ उसका दूर-दूर तक पता नहीं। इस तरह मनुष्य ईश्वरीय हिदायतों से बग़ावत करके इनसानों द्वारा रचित विचारधाराओं और दर्शनों के तहत जीवन व्यतीत कर रहा है।

ज़ाहिर है कि ऐसे सीमित धर्म और ईश्वर की ज़रूरत ही क्या है? यह धर्म की सेक्यूलर धारणा है। धर्म के इस स्वरूप को मानने का सीधा अर्थ ईश्वर से बग़ावत है जिसके नतीजे में इनसान भयानक विरोधाभास और कपटाचार का शिकार हो जाता है। अतएव, इसके भयानक परिणाम आज मनुष्य अपने जीवन के प्रत्येक विभागों में भुगत रहा है। यह कैसे सम्भव है कि ईश्वर मात्र पूजा-पाठ की हद तक प्रभु हो और शेष व्यक्तिगत एवं सामूहिक जीवन में वह कहीं भी इनसान का ख़ुदा न हो या इनसान ख़ुदा का बन्दा न हो और उसकी ख़ुदाई से आज़ाद हो।

कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न

1. क्या ईश्वर ने ख़ुद कहा है कि इनसान उसे और धर्म को पाने के लिए अध्यात्मिक अनुभव हासिल करे। या सच्चाई की तलाश Eternal Truth, Supreme Reality या Ultimate Reality को पाने की कोशिश करे और उस कोशिश में वह जिस नतीजे पर पहुँचे, उसे ही धर्म कहा जाए, और धर्म को ईश्वर की मंजूरी भी हासिल होगी। क्या ईश्वर इनसान को धर्म प्रदान करने में असमर्थ या बेबस है?
2. इनसान को ईश्वर ने ज़मीन पर पैदा करके उस प्रथम-मानव (आदम अलैहि॰) को यूँ ही अंधकार में छोड़ दिया और उसे अधिकार दे दिया कि वह अपनी जीवन-प्रणाली की रचना कर डाले। या ईश्वर ने स्वयं उसका

मार्गदर्शन किया और उसके धर्म (जीवन-प्रणाली) की रचना की।

3. क्या ईश्वर ने यह बात बताई है कि उसने इनसान को बहुत सारे धर्म प्रदान किए हैं जो एक-दूसरे के विपरीत हैं और जिनमें ज़बरदस्त विरोधाभास है, लेकिन फिर भी वे सब सही हैं? क्या उसने बताया है कि बहुत सारे धर्मों में किसी ख़ास धर्म की यह पोज़ीशन नहीं है कि अकेले वही हक़ (सत्य) पर है?
4. धर्म की रचना की ज़िम्मेदारी किसपर है? इनसान अगर स्वयं ही धर्म की रचना कर लेता है तो फिर ईश्वर की ज़रूरत ही क्या है? कुछ धर्मों में तो ईश्वर का कोई तसव्वुर ही नहीं पाया जाता। क्या ईश्वर के तसव्वुर के बग़ैर भी कोई धर्म, धर्म कहलाने का हक़ रखता है? इनसान पर धर्म की रचना की ज़िम्मेदारी किसने डाली है?
5. मानव-इतिहास में यह बात नोट की गई है कि विभिन्न कालों एवं विभिन्न क़ौमों में ऐसे नेक, सत्यवादी और चरित्रवान महापुरुष गुज़रे हैं जिन्होंने अपने आपको ईश्वर का सन्देष्टा (Prophet) बताया और ईश्वर का प्रतिनिधि होने का एलान किया। उन्होंने ईश्वर और उसके अस्तित्व और गुणों के बारे में साफ़ और स्पष्ट शिक्षाएँ प्रस्तुत कीं। उन्होंने मरने के बाद की ज़िन्दगी, स्वर्ग व नरक, संसार में इनसान की कामयाबी और आख़िरत में नजात (मुक्ति) का रास्ता बताया। उन चरित्रवान इनसानों ने यह भी बताया कि वे अपनी ओर से कोई सन्देश और शिक्षाएँ नहीं दे रहे हैं, बल्कि जो कुछ प्रस्तुत कर रहे हैं वे सब ईश्वर की ओर से है।

इन नबियों और पैग़म्बरों ने ईश्वरीय हिदायतों और शिक्षाओं पर सबसे पहले ख़ुद अमल किया और अपनी क़ौमों के सामने मिसाल पेश की। ये नबी और पैग़म्बर दुनिया की विभिन्न क़ौमों में और विभिन्न कालों में निरन्तर आते रहे। आज से लगभग एक हज़ार चार सौ पचास साल पहले अरब में हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) पर पैग़म्बरों का यह सिलसिला ख़त्म हुआ। अतः मुहम्मद (सल्ल॰) ईश्वर के अन्तिम सन्देष्टा हैं।

इन तमाम नबियों और पैग़म्बरों की शिक्षाओं और हिदायतों में कोई मतभेद या विरोधाभास नहीं पाया गया। ये सभी सदैव निस्स्वार्थ भाव से इनसानों की भलाई, कल्याण एवं उनकी मुक्ति के लिए प्रयास करते रहे। इन पवित्र एवं पावन विभूतियों को ईश्वर का सन्देश और मार्गदर्शन फ़रिश्तों के माध्यम से वह्‌य (प्रकाशना) के रूप में मिलता रहा।

6. ईश्वर अत्यन्त दयावान और कृपाशील है। वह इनसानों से अपार प्रेम करता है। इनसान को उसने अपनी समस्त सृष्टि से सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है। सृष्टि की अनगिनत चीज़ों को उसकी सेवा के लिए लगा रखा है। इनसान की तमाम छोटी-बड़ी भौतिक आवश्यकताओं को पूरा किया है और आज भी कर रहा है। ईश्वरीय हिदायत और रहनुमाई इनसान की सबसे बड़ी और बुनियादी ज़रूरत है। अब सवाल यह है कि उस दयावान ईश्वर ने इनसानों की दूसरी तमाम ज़रूरतें तो पूरी कीं, लेकिन इस बुनियादी ज़रूरत (मार्गदर्शन) को क्यों पूरा नहीं किया?

सच्चे धर्म की विशेषताएँ

विभिन्न धर्मों के बीच सच्चे धर्म की खोज करते समय निम्नलिखित विशेषताओं पर ध्यान दिया जाना चाहिए–

- वह धर्म ईश्वर की ओर से हो। यदि वह ईश्वर की ओर से है तो खुद उस धर्म का दावा भी यही होना चाहिए। उसके मूल ग्रन्थ/ग्रन्थों में यह बात स्पष्ट रूप से वर्जित होनी चाहिए कि यह ईश्वर का भेजा हुआ धर्म है, किसी इनसान का बनाया हुआ नहीं है। इसी आधार पर यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि ऐसे ईश्वरीय धर्म को किसी इनसान से जोड़कर नहीं देखा जा सकता। यदि वह किसी इनसान से सही या ग़लत तौर पर जोड़ दिया गया हो, या उसका संस्थापक कोई इनसान हो तो वह ईश्वरीय धर्म नहीं हो सकता।
- धर्म के इस दावे के बाद दलीलों की रौशनी में इस दावे पर विचार-विमर्श करके किसी नतीजे पर पहुँचा जा सकता है। यदि कोई धर्म ईश्वर द्वारा अवतरित है और इनसान उसका इनकार करता है तो वह ईश्वर का भी

इनकार करता है और अपने लिए एक हौलनाक नाकामी को दावत देता है।

- वह धर्म मानव-स्वभाव और बुद्धि एवं विवेक के विरुद्ध न हो। वह धर्म स्वाभाविक एवं प्राकृतिक हो और बुद्धि एवं विवेक की कसौटी पर पूरा उतरता हो। उसके बुनियादी उसूल कभी न बदले हों, बल्कि वह हर दौर और प्रत्येक मानव-समुदाय के लिए समान रहे हों।

  उसकी शिक्षाएँ अस्वाभाविक, विवेकहीन और तर्कहीन न हों, जैसे दो या दो से ज़्यादा ख़ुदा ख़ुदाई में भागीदार बना लिए गए हों। या ईश्वर की सन्तान का होना मान लिया जाए। या ईश्वर के थक जाने की बात, और उसके कुश्ती लड़ने की बात आदि। वह देवमालाई, क़िस्से-कहानियों का संग्रह न हो। उसकी शिक्षाएँ और उसके मार्गदर्शन का सम्बन्ध आज के मानव-जीवन और उसकी समस्याओं से हो। उसकी शिक्षाएँ और मार्गदर्शन व्यवहारिक भी हों। वह केवल रस्मो-रिवाज और बाप-दादा से चली आनेवाली कुछ रिवायतों का संग्रह न हो।

- उसके मूल स्रोत यानी धर्मग्रन्थ और धर्मग्रन्थ पेश करनेवाली हस्ती दोनों प्रमाणित हों और परिवर्तनों और छेड़-छाड़ से सुरक्षित रहे हों। उनके बारे में कभी यह सन्देह न किया गया हो कि मानव-इतिहास में ये थे भी या नहीं। उनकी बातें मात्र कहानियाँ हैं, या वास्तविकता से भी उनको कुछ लेना-देना है।

  इसी तरह उस धर्म का सन्देश और शिक्षाएँ, उसे पेश करनेवाली शख़्सियत के जीवन में ही सुरक्षित कर ली गई हों। ऐसा न हो कि धर्म को पेश करनेवाली हस्ती के दुनिया से चले जाने के कई सौ साल के बाद उसके ग्रन्थ, शिक्षाओं और सन्देश को मात्र स्मरण और दन्त कथाओं के आधार पर लिपिबद्ध करने का प्रयास किया गया हो और इसके परिणामस्वरूप अनगिनत मौलिक एवं आंशिक मतभेद उत्पन्न हो गए हों और पूरा मामला ही सन्देहास्पद और अविश्वसनीय हो गया हो।

- धर्म ईश्वर और इनसान का सिर्फ़ निजी ताल्लुक़ बनकर न रह जाए कि

व्यक्तिगत जीवन के एक अत्यन्त सीमित दायरे में तो ख़ुदा की याद, पूजा या उपासना की जाए, लेकिन जीवन का शेष हिस्सा ख़ुदा की बन्दगी से आज़ाद हो। जैसा कि आज का इनसान कर रहा है। वह अनगिनत विचारधराओं, दर्शनशास्त्रों तथा मानव-निर्मित धर्मों एवं विचारधाराओं के कारण भटक गया है। उसका नतीजा है कि वह अपनी ज़िन्दगी में सुख-शान्ति, हार्दिक सन्तुष्टि, आत्म-शान्ति, न्याय व इनसाफ़, निर्माण एवं विकास और मौलिक ख़ुशहाली के लिए तरस रहा है। ज़िन्दगी की ये मान्यताएँ और नेमतें इनसान के लिए एक मरीचिका बनकर रह गई हैं।

आज उसकी ज़िन्दगी एक तरह का अज़ाब (यातना) बनकर रह गई है। सवाल यह है कि क्या ईश्वर ऐसा हो सकता है कि वह केवल मान लेने और इबादतगाहों में जाकर थोड़ी देर उसे याद कर लेने के अलावा हमारे किसी काम न आए। क्या यह भयानक विरोधाभास नहीं है कि ईश्वर को मानो, लेकिन अपनी ज़िन्दगी में कहीं भी ईश्वर की किसी बात को न मानो, बल्कि मनमानी करते रहो। मानव-निर्मित दर्शनशास्त्रों, नज़रियों और धर्मों के तहत ज़िन्दगी बसर करते रहो! शैतान ने इनसान को इस तरह ईश्वर में आस्था रखने का इत्मीनान दिलाकर पूरी ज़िन्दगी में ईश्वर का नाफ़रमान और बाग़ी बना दिया है।

सच्चे धर्म में केवल आस्था, उपासना का ढंग और नैतिक-शिक्षाएँ ही नहीं, बल्कि इनसान की पूरी ज़िन्दगी के लिए उसूली मार्गदर्शन होना चाहिए। इसके बाद ही इनसान की पूरी ज़िन्दगी ईश्वर की उपासना में बसर हो सकेगी। ईश्वर की बन्दगी और पूरी ज़िन्दगी में उसकी पैरवी और फ़रमाँबरदारी ही इनसान की पैदाइश का मूलोद्देश्य है।

- धर्म इनसानी ज़िन्दगी की समस्याओं को हल करने की क्षमता रखता है। इतिहास में उसका व्यवहारिक उदाहरण भी पाया जाता हो। यानी उसके मूल विचार और शिक्षाओं के आधार पर व्यक्ति, परिवार और समाज का निर्माण किया गया हो और इतिहास में उसका रिकार्ड प्रमाणिक तौर पर सुरक्षित किया गया हो। धर्म की शिक्षाएँ विशुद्ध, सैद्धान्तिक और

व्यवहारिक हों। जीवन की समस्याओं से वह भागता न हो, बल्कि उनको हल करने के लिए बुनियादी उसूली रहनुमाई करता हो। वह रहबानियत (संन्यास) की शिक्षा देनेवाला न हो। उसमें आदर्श-जीवन का नक़्शा बीवी-बच्चों और घर-परिवार से कट कर न हों, बल्कि उन सबके अधिकारों को वह स्वीकार करता हो। उनके सिलसिले में जो ज़िम्मेदारियाँ डाली गई हैं उनके पूरा करने को वह ख़ुदा की ख़ुशनूदी हासिल करने का ज़रिआ मानता हो।

- वह धर्म, व्यक्ति और समाज में एक बेहतरीन एवं समन्वय स्थापित करता हो। वह व्यक्ति को इतना महत्व न देता हो जिसके नतीजे में समाज को नुक़सान पहुँचे और न समाज को इतना महत्व देता हो जिससे व्यक्ति को नुक़सान पहुँचे। व्यक्ति और समाज दोनों एक-दूसरे के लिए सहायक व मददगार बनें। व्यक्ति का निर्माण और उसका विकास समाज के बग़ैर सम्भव नहीं।
- उस धर्म में किसी धार्मिक गुरु को वह स्थान न दिया गया हो जिससे वह ईश्वर और इनसान का माध्यम ठहरा दिया जाए। यानी इनसान का सीधा सम्बन्ध अपने ईश्वर से स्थापित हो सके। इनसान और ईश्वर के बीच कोई ऐसी शख़्सियत, पंडित, पुजारी, पीर या पादरी आदि न हो, जिसकी अनदेखी करते हुए ईश्वर से सीधा ताल्लुक़ न जोड़ा जा सके।
- उस धर्म की शिक्षाएँ सार्वभौमिक और सर्वव्यापी हों। वह किसी क्षेत्रीय, राष्ट्रीय या नस्ली आधार पर इनसानों को सम्बोधित करनेवाला न हो, बल्कि दुनिया के तमाम इनसानों को समान रूप से सम्बोधित करता हो। महिलाओं और पुरुषों के बीच जो स्वाभाविक अन्तर है, उसका ख़याल तो रखता हो, लेकिन लिंग-भेद न करता हो।
- उस धर्म में (विशेषकर उसकी किताबों में) और उसकी अहम शख़्सियतों की ज़िन्दगी में अश्लीलता की कोई बात न पाई जाती हो। गन्दे क़िस्से, अश्लील कहानियों और गन्दी बातों से उसका जीवन बिलकुल पाक-साफ़ हो।

- उसमें मतभेद और विरोधाभास न पाया जाता हो। उसकी किताब और उसकी अहम शख़सियतों के आचरण और शिक्षाओं में सामंजस्य एवं समन्वय पाया जाता हो। ये सब मिलकर परस्पर एक ही बात शुरू से आख़िर तक कहते हों।
- वह सारे इनसानों को एक ही नज़र से देखता हो। जन्म, रंग, वंश, क्षेत्र और भाषा के आधार पर इनसानों को विभाजित करके फ़ितना व फ़साद फैलानेवाला न हो।
- उसके नज़दीक न्याय का मापदंड सभी के लिए समान हो। इस मामले में वह मालिक-नौकर, ताक़तवर-कमज़ोर और अमीर-ग़रीब सबके लिए समान रवैया अपनाता हो।

(साभार : मौलाना मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ान, अनुवादक, तर्जमा क़ुरआन)

धर्मों की कॉमन (संयुक्त) बातें

धर्मों में परस्पर मतभेद और अन्तर पाए जाते हैं, जिनकी अनदेखी नहीं की जा सकती। लेकिन यह भी एक सच्चाई है कि सभी धर्मों में सामान्य रूप से ईश्वर की कल्पना, नैतिक शिक्षाएँ और कुछ मान्यताएँ समान हैं। इन्हीं पहलुओं को सामने रखकर आम तौर पर यह राय क़ायम कर ली जाती है कि सारे धर्म हक़ पर हैं। इस अहम पहलू पर विचार करने की ज़रूरत है।

ईश्वर की कल्पना सभी धर्मों में मौजूद है, लेकिन यदि विस्तार में जाएँ और गहराई से अध्ययन करें तो इसमें बड़ा अन्तर पाया जाता है जिसके कारण ये धारणाएँ एक जैसी नहीं रह जातीं, बल्कि एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न और विपरीत हो जाती हैं। कुछ धर्म तो ऐसे भी हैं जहाँ ख़ुदा के अस्तित्व और उसकी ज़रूरत को स्वीकार ही नहीं किया जाता। क्या एक ही वक़्त में उन सबको सही और सच्चा क़रार दिया जा सकता है।

जो नैतिक शिक्षाएँ और मान्यताएँ सभी धर्मों में पाई जाती हैं, वे 'सभी धर्म समान हैं' के उसूल को प्रमाण्ति नहीं करतीं। क्योंकि उनके कारक तत्त्व बिलकुल अलग-अलग हैं और नतीजे के लिहाज़ से भी धर्मों में मतभेद और उनमें असहमति पाई जाती है। यद्यपि नैतिकता (अख़लाक़) मानव-जीवन

का अत्यंत महत्वपूर्ण विभाग है, लेकिन यह मात्र एक अंश है जो कुल (सम्पूर्ण) का स्थान नहीं ले सकता। नैतिक शिक्षाएँ और कुछ सामान्य मान्यताओं के सम्बन्ध में भी स्थिति यह है कि गहराई और विस्तार में जाने के बाद भी विभेद पाए जाते हैं।

नैतिक शिक्षाओं और मान्यताओं पर चलने के लिए भी मज़बूत प्रेरक दरकार हैं। उनपर न चलने और अवज्ञा करने की स्थिति में एक सर्वशक्तिमान सत्ता के सामने पूछ-गच्छ होने और पकड़े जाने का एहसास और भय ज़रूरी है। यदि वह एहसास न हो तो नैतिक शिक्षाएँ और सामाजिक मान्यताएँ केवल पुस्तकों और नसीहतों तक सिमटकर रह जाएँगी और व्यावहारिक जीवन में उनकी कोई झलक और असरात नहीं पाए जाएँगे।

धर्मों में जो सामान्य (Common) बातें मिलती हैं वे अस्ल में एक अहम सच्चाई का पता देती हैं और वह यह है कि मानवजाति के शुरुआत में एक ही धर्म था। उसी एक धर्म से समय के साथ-साथ विभिन्न कारणों एवं प्रयोजनों के आधार पर नए-नए धर्म गढ़ लिए गए।

कुछ धर्मों के इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि पहले से प्रचलित धर्म की ख़राबियों या प्रचलित धर्म के अनुयायियों की ओर से अत्याचार एवं अन्याय के विरुद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप नए धर्म गढ़ लिए गए। मिसाल के तौर पर बौद्ध और जैन दोनों धर्मों के बारे में कहा जाता है कि ये हिन्दू धर्म की प्रतिक्रिया में अस्तित्व में आए।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अधिकांश धर्मों के संस्थापकों की शख़सियत और उनकी शिक्षाएँ और मार्गदर्शन इतिहास की लम्बी यात्रा में कहीं लुप्त होकर रह गए हैं। उनकी सच्चाई क्या है? यह जान लेना आज सम्भव नहीं है।

धर्मों की मूल शिक्षाएँ, उनके आदेश और उपदेशों को मालूम करने का एक अहम ज़रिआ (माध्यम) धार्मिक ग्रन्थ हैं और दूसरा ज़रिआ उनके संस्थापकों के आचरण और उनकी जीवनी है। लेकिन (इस्लाम को छोड़कर) इन दोनों माध्यमों के ताल्लुक़ से निराशा के सिवा कुछ हाथ नहीं लगता।

क्योंकि उन धर्म-संस्थापकों के जीवन में उनकी शिक्षाओं को लिपिबद्ध नहीं किया जा सका था। उनकी मृत्यु के सैकड़ों वर्ष बाद स्मरण के आधार पर उन्हें संकलित करने का प्रयास किया गया। नतीजा यह हुआ कि सैकड़ों विरोधाभास सामने आए। इसी आधार पर कई-कई फ़िरक़े (समुदाय) अस्तित्व में आ गए। स्पष्ट रहे कि पुस्तकों के संकलित होने तक मौखिक बातें सीना-ब-सीना चलती रहीं। अब यह विश्वास के साथ कैसे कहा जा सकता है कि धर्म-संस्थापकों की शिक्षाओं एवं उपदेशों को उनके अनुयायियों और शिष्यों ने बिना कुछ घटाए-बढ़ाए और बदलाव किए उसे सुरक्षित रखा था?

कुछ इसी तरह का मामला धर्म-संस्थापकों की जीवनियों और उनके आचरण का है। आम तौर से इनमें कहानियों और प्रेम व आस्था का रंग, तथ्यों एवं सच्ची घटनाओं पर भारी है। इसी लिए कुछ शोधकर्ताओं और धार्मिक विद्वानों ने कुछ धर्म-संस्थापकों के अस्तित्व पर ही प्रश्न खड़ा कर दिया है और कहा है कि यह तमाम चीज़ें कालान्तर (Pre Historic Era) से सम्बन्धित हैं।

मानवता का पहला धर्म

हम यह कैसे मान सकते हैं कि मानवजाति के उद्‌भवकाल (आग़ाज़) में कोई धर्म नहीं था, या बहुत सारे धर्म थे? जिस ईश्वर ने इनसान और तमाम मख़लूक़ात (सृष्टि) को पैदा किया, जिसने पक्षियों को उड़ना और मछलियों को तैरना सिखाया, क्या उसने इनसान की ज़िन्दगी का कोई मक़सद सुनिश्चित नहीं किया और उसे अपनी इच्छा और पसन्दीदा रास्ते पर जीना नहीं सिखाया? सृष्टि की हर चीज़ इनसान के लिए है और इनसान ईश्वर की सबसे क़ीमती रचना है। क्या इनसान पक्षियों और मछलियों से भी गया गुज़रा है कि ईश्वर ने उन पशु-पक्षियों के लिए तो नियम-क़ानून बनाए, लेकिन इनसान को ज़िन्दगी गुज़ारने के लिए कोई दिशा-निर्देश या मार्गदर्शन प्रदान नहीं किया और उन्हें भटकने के लिए छोड़ दिया?

दुनिया में जितनी चीज़ें भी पाई जाती हैं उन सबको पैदा करने का

मक़सद ईश्वर की तरफ़ से तय है। इसी तरह इनसान, जो पूरी सृष्टि में सर्वोच्च एवं श्रेष्ठ है, का जीवन-उद्देश्य भी ईश्वर ने निर्धारित किया है। इस उद्देश्य से इनसान को आगाह करनेवाला भी ईश्वर ही हो सकता था। अतएव ईश्वर ने इनसान को ज़िन्दगी का मक़सद बताया और उस मक़सद को पाने के लिए विस्तार से हिदायतें और रहनुमाई उपलब्ध कराई। इसके लिए जो व्यवस्था की गई उसे 'रिसालत' (ईशदूतत्व) या 'पैग़म्बरी' कहते हैं।

इनसान इतनी बुद्धि एवं विवेक रखता है कि जब कोई मशीन बनाता है तो उसके प्रयोग की विधि और निर्देश पर आधारित एक गाइड (Manual) जारी करता है। वह ईश्वर जिसने इनसान को बुद्धि एवं विवेक दिया, क्या ऐसा हो सकता है कि उसने इनसान को पैदा करके उसको ज़िन्दगी का मक़सद न बताए और उसके लिए हिदायत और मार्गदर्शन का प्रबन्ध न करे? क्या ईश्वर ने इनसान को पैदा तो कर दिया, लेकिन उसे ज़िन्दगी का मैनुअल (गाइड) नहीं दिया?

सच्चाई यह है कि ईश्वर ने इनसानों को केवल सूरज, चाँद, हवा, पानी, जंगल, पहाड़, दरिया और समुद्र ही प्रदान नहीं किया, बल्कि इनसान की सबसे बड़ी ज़रूरत को भी पूरा किया, ताकि वह अपने पैदा करनेवाले को पहचान सके, ज़िन्दगी के मक़सद को समझ सके, ईश्वर की ख़ुशनूदी हासिल कर सके और उसकी नाराज़गी से बचने का रास्ता मालूम कर सके। ईश्वर ने इनसान की इस सबसे बड़ी और अहम ज़रूरत को बेहतरीन तरीक़े से पूरा किया।

मानवजाति के आरम्भ में दिया गया गाइड (Manual) यानी हिदायतनामा ही इनसानियत का पहला धर्म था। उस धर्म को किसी व्यक्ति ने नहीं बनाया था, बल्कि वह ईश्वर के द्वारा प्रदान किया हुआ था। उसमें एक सच्चे ईश्वर की पहचान, सांसारिक, भौतिक एवं अध्यात्मिक जीवन का संतुलित विकास, नैतिक शिक्षाएँ, नफ़्स का तज़किया (शुद्धिकरण एवं विकास), मानवाधिकारों की रक्षा, पारलौकिक मुक्ति, ईश्वर को प्रसन्न करने का तरीक़ा और पूरे जीवन के लिए मार्गदर्शन मौजूद था।

उस धर्म में एक ओर तो व्यक्ति और समाज के लिए न्याय और

इनसाफ़ और अम्न व सलामती की ज़मानत दी गई थी तो दूसरी ओर अन्याय एवं अत्याचार और हर प्रकार के शोषण, उपद्रव, बिगाड़ से मुक्त ज़िन्दगी गुज़ारने के लिए शिक्षाएँ प्रदान की गई थीं। यह ईश्वर के समक्ष व्यक्ति का पूर्ण समर्पण का विधान था।

एक सच्चे और ईश्वरीय धर्म की जो विशेषताएँ पिछले पृष्ठों में बयान की गई हैं, वे सारी विशेषताएँ उस धर्म में पाई जाती थीं। उस धर्म की शिक्षा एवं उपदेश और उसका व्यवहारिक आदर्श प्रस्तुत करने के लिए ईश्वर को इनसान के रूप में दुनिया में आने की ज़रूरत ही नहीं थी (जैसा कि अवतारवादी मानते हैं)। ईश्वर ने धर्म की शिक्षा और उसके प्रचार-प्रसार और व्यवहारिक आदर्श प्रस्तुत करने के लिए अपने बन्दों में से हर दौर में बेहतरीन इनसान नियुक्त किए। नबी और पैग़म्बर हर दौर में विभिन्न क़ौमों के अन्दर आते रहे। उन सभी ने लोगों के सामने एक ही धर्म पेश किया। ईश्वर ने उन महापुरुषों को अपनी ओर से किताबें और ग्रन्थ प्रदान किए।

हर दौर में ऐसे लोग रहे जो नबियों और पैग़म्बरों की दावत क़बूल करके उनकी शिक्षाओं पर अमल करते रहे, वहीं दूसरी ओर इनकार, ज़िद और हठधर्मी का रवैया अपनाते हुए विरोध करनेवाले इनसान भी होते थे। कुछ नादानों ने एक ज़्यादती यह की कि नबियों और पैग़म्बरों की शिक्षाओं में मनमाना बदलाव करने लगे। हक़ (सत्य) को मानकर उसपर चलने के बजाए नए-नए अक़ीदे और स्वरचित शिक्षाओं को सच्चे धर्म में शामिल करके वे स्वयं भी भटक गए और दूसरे इनसानों की गुमराही की वजह भी बने। आम इनसानों पर ज़ुल्म व अत्याचार का चलन आम हुआ तो उसकी प्रतिक्रिया में नए-नए धर्म अस्तित्व में आते चले गए। ईश्वर ने तो एक धर्म ही इनसानों को प्रदान किया था, लेकिन इनसानों ने उस ईश्वरीय धर्म में कुछ घटा-बढ़ाकर नए-नए धर्म बना लिए।

धार्मिक लोगों के बीच बिगाड़ का कारण

इस विषय पर मशहूर इस्लामी विचारक डॉ॰ अब्दुल-हक़ अनसारी का यह लेख वस्तुस्थिति को स्पष्ट करता है—

"(भारत में) विभिन्न धर्मों के माननेवालों के बीच बिगाड़ और टकराव के कुछ दूसरे ही कारण हैं–

पहला और बुनियादी कारण यह है कि हममें से कुछ लोग और कुछ समुदाय यह मानने के लिए तैयार नहीं हैं कि भारत केवल एक धर्म के माननेवालों का नहीं, बल्कि उन सारे धर्मवालों का देश है जो यहाँ पर सैकड़ों और हज़ारों साल से रहते और बसते चले आ रहे हैं। ये लोग इस देश को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझते हैं और दूसरों को विदेशी कहते हैं।

उन्होंने भारतीय होने की जो शर्तें तय कर रखी हैं, उनका सार यह है कि जब तक दूसरे लोग उनकी धार्मिक अवधारणाओं को अपनी अवधारणा और उनके धार्मिक शख़्सियतों को अपनी शख़्सियतें न मान लें, यानी दूसरे शब्दों में जब तक उनके धर्म के एक-एक अंश पर ईमान न लाएँ, उस समय तक भारतीय कहलाने के हक़दार नहीं है। उनके विचार में भारतीय होने के लिए इस देश के साथ वफ़ादारी और प्रेम काफ़ी नहीं है। ज़ाहिर है इस मानसिकता के होते हुए देश में कभी शान्ति का वातावरण स्थापित नहीं हो सकता।

दूसरा कारण यह है कि कुछ लोग ग़लती से यह सोचने लगे हैं कि उनका अपने धर्म को सच्चा समझना, अपने रस्मो-रिवाज को श्रेष्ठ मानना, अपनी परम्पराओं और महापुरुषों की इज़्ज़त करना इस बात की माँग करता है कि वे अपने धर्म को दूसरों पर थोप दें और अपने तौर-तरीक़ों को दूसरों से ज़बरदस्ती मनवाएँ, और अगर यह सम्भव न हो तो उनके अक़ीदों पर व्यंग करें, उनकी इबादतगाहों का अनादर करें और उनके महापुरुषों की हँसी उड़ाएँ। हालाँकि इन दोनों बातों में कोई ताल्लुक़ नहीं है। मैं यदि किसी अक़ीदे (आस्था) को सही और दूसरे को ग़लत समझता हूँ तो उससे मुझे यह अधिकार नहीं मिल जाता कि मैं दूसरों के अक़ीदे का मज़ाक़ उड़ाऊँ। यदि मैं अपने तौर-तरीक़ों को अच्छा और दूसरों के तौर-तरीक़ों को अच्छा नहीं समझता हूँ तो इससे यह अनिवार्य नहीं हो जाता कि मैं अपने तौर-तरीक़ों को दूसरों पर थोप दूँ। जो व्यक्ति या समुदाय ऐसा करेगा वह मानवता या लोकतंत्र का ही नहीं, बल्कि स्वयं अपने धर्म की मान्यताओं का गला घोटेगा।

तीसरा कारण यह है कि हममें से अकसर अपने लिए जो अधिकार चाहते हैं वे दूसरों को देने के लिए तैयार नहीं होते। मिसाल के तौर पर हम यह चाहते हैं कि हमारी जान व माल सुरक्षित हो। हमारे मान-सम्मान को आँच न आए, हमें शिक्षा और विकास का पूरा अवसर मिले। पदों पर हमारे लोग आसीन हों। नौकरियाँ हमारे लोगों को मिले। हमें अपने धर्म के प्रचार-प्रसार की पूरी आज़ादी हो। अपने बच्चों को अपने धर्म की शिक्षा देने का अवसर प्राप्त हो। अपने धार्मिक एवं सांस्कृतिक संस्थाएँ क़ायम करने और चलाने का अधिकार और अपनी भाषा को पढ़ने-पढ़ाने और विकसित करने की सारी सुविधाएँ प्राप्त हों। परन्तु हम यही अधिकार दूसरे धर्म के माननेवालों को देने के लिए तैयार नहीं होते। हम स्वयं अपने अधिकार से अधिक प्राप्त करना चाहते हैं, परन्तु दूसरों को उनका उचित हक़ भी देना पसन्द नहीं करते और हम कदापि नहीं सोचते कि हमारा यह रवैया न्याय और इनसाफ़ के विरुद्ध ही नहीं, बल्कि स्वयं हमारे अपने धर्म की परम्पराओं एवं मान्यताओं के भी विरुद्ध है। इससे हमारे धर्म की इज़्ज़त नहीं बढ़ती, बल्कि पूरी दुनिया में रुसवाई होती है।"

डॉ॰ अब्दुल-हक़ अनसारी ने धार्मिक लोगों के बीच बिगाड़ और टकराव के उपरोक्त तीन बड़े कारण गिनाने के बाद उनका समाधान भी पेश किया है। वे कहते हैं—

1. हम भारत को हिन्दुओं, मुसलमानों, सिखों, ईसाइयों, जैनियों, पारसियों, और उन सारे समुदायों का देश समझें जो पीढ़ियों से यहाँ रहते और बसते चले आए हैं। हम सच्चे दिल से मानें कि हमारे देश में प्रत्येक धर्म एवं समुदाय के लोगों को समान अधिकार प्राप्त हों।
2. अपने धर्म, अपने रीति-रिवाज, अपनी मान्यताओं एवं परम्पराओं को ज़बरदस्ती दूसरों पर न थोपें। दूसरे के धर्मस्थलों, धार्मिक ग्रन्थों, धर्मगुरुओं, परम्पराओं, त्योहारों और तौर-तरीक़ों का सम्मान करें।

   दूसरों के धर्म, धार्मिक मामलों और शख़्सियतों के सम्मान का अर्थ यह कदापि नहीं होता कि हम अपने धर्म की बातों पर सन्देह करें। न उससे

यह नतीजा निकलता है कि हम प्रत्येक धर्म को समान मानने लगें और किसी को किसी के मुक़ाबले में प्राथमिकता न दें या किसी बात को सही या किसी को ग़लत न ठहराएँ। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बातें सही और दूसरे की बातों को ग़लत समझने का हक़ हासिल है। लेकिन किसी को यह हक़ नहीं पहुँचता कि वह दूसरों की चीज़ का अनादर और अपमान करे।

3. हमें हर इनसान का यह हक़ मानना चाहिए कि वह किसी धर्म पर यक़ीन रखने या एक को छोड़कर दूसरा धर्म अपनाने में आज़ाद और ख़ुदमुख़्तार है। उसको अपने विचारों और विचारधाराओं को सामान्य नैतिक नियमों एवं लोकतांत्रिक सीमाओं में रहते हुए व्यक्त करने और इस मक़सद के लिए प्रचार एवं प्रसार के समस्त संसाधनों, प्रेस एवं समाचार-पत्रों का प्रयोग करने, पुस्तकें प्रकाशित करने तथा विद्यालयों एवं मदरसों को स्थापित एवं संचालित करने का समान अधिकार है।
4. आख़िरी बात यह कि हम अपने धर्म के आम मानवीय मूल्यों को न भूलें। उन्हें अपने धर्म का बुनियादी और अहम हिस्सा समझें, धर्म और मिल्लत का अन्तर किए बिना उनको प्रत्येक व्यक्ति के साथ बरतना सीखें। मानव-सेवा को अपना धर्म समझें और किसी भी व्यक्ति के साथ ज़ुल्म व ज़्यादती को महापाप समझें। यह बात मन में बिठा लें कि किसी एक इनसान को नाहक़ सताकर, उसको जाएज़ अधिकारों से वंचित करके, उसकी जान, माल, इज़्ज़त आबरू को नुक़सान पहुँचाकर हम न अपनी सेवा करेंगे, न अपने धर्म की और न ही अपने देश की। हक़ व इनसाफ़ के ख़िलाफ़ हमारा हर क़दम मानवीय, नैतिक, धार्मिक एवं अध्यात्मिक हर पहलू से ग़लत है और हमारी नजात की राह में पहाड़ जैसी रुकावट है। (राष्ट्रीय-एकता और इस्लाम, पृष्ठ 18-21)

कुछ मूल धारणाएँ और धर्म

धर्म की कुछ मूल धारणाओं के सिलसिले में धर्म की शिक्षाओं पर विचार करें तो 'सभी धर्म समान हैं' की वास्तविकता का पता चल सकता है। यदि इन मूल धारणाओं के बारे में सभी धर्म एकमत हैं या मात्र आंशिक मतभेद पाए जाते हैं तो कहा जा सकता है कि सभी धर्म सत्य एवं सही हैं। लेकिन यदि इसके विपरीत इन मूल धारणाओं में अत्यधिक विभेद और विरोधाभास पाया जाता है तो विचार करना चाहिए कि क्या इसके बाद भी "सभी धर्म समान हैं की धारणा" उचित है? सभी धर्मों की शिक्षाओं का विस्तृत विवरण बहुत लम्बा हो जाएगा, इसलिए कुछ ख़ास धर्मों की धारणाओं पर विचार कर लीजिए। कुछ मूल धारणाएँ ये हैं–

1. ईश्वर का अस्तित्व और उसकी धारणा।
2. सृष्टि की रचना।
3. इनसान के लिए हिदायत व रहनुमाई (मार्गदर्शन) (यानी धर्म या दीन) का इन्तिज़ाम।
4. मौत के बाद ज़िन्दगी (परलोक, स्वर्ग और नरक)

ये धारणाएँ केवल इल्मी व दार्शनिक चिन्तन के विषय नहीं हैं। इनका गहरा सम्बन्ध व्यक्ति और समाज के व्यवहारिक जीवन, उसकी सफलता और विफलता और उसके पारलौकिक परिणाम से है।

(1) ईश्वर की धारणा

सबसे पहले ईश्वर की धारणा के सिलसिले में धर्मों की मौलिक शिक्षाओं का सार निम्नलिखित है–

हिन्दू धर्म

इस धर्म में ईश्वर की धारणा पर वार्ता की शुरुआत एक हस्ती से होती है और उसके उपरान्त दो और हस्तियाँ भी ख़ुदाई में शरीक हो जाती हैं। इस तरह तीन ईश्वर (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) माने गए हैं। ब्रह्मा को

सृष्टि का स्रष्टा माना गया है। विष्णु को जगत्-प्रबंधक और पालनहार के रूप में स्वीकार किया गया है और महेश को जगत् का संहार करनेवाला माना गया है। आगे चलकर ईश्वर की संख्या बढ़कर 33 करोड़ तक जा पहुँचती है। जहाँ तक वेदों का ताल्लुक़ है उसमें एक ईश्वर के अस्तित्व और उसके गुणों का उल्लेख मिलता है।

हिन्दू धर्म में दो विचारधाराएँ ऐसी भी हैं जो ईश्वर के अस्तित्व के ख़िलाफ़ तर्क पेश करती हैं, यानी मीमांसा और सांख्या। यानी हिन्दू धर्म में ईश्वर के बारे में कोई सर्वसम्मत धारणा नहीं है जिसको स्वकीर करना हिन्दू बनने के लिए ज़रूरी हो, या जिसका इनकार करनेवाला हिन्दू धर्म से निकल जाता हो। एक ईश्वर को माननेवाले, एक से अधिक ईश्वरों को माननेवाले और ईश्वर का इनकार करनेवाले सब हिन्दू हो सकते हैं।

हिन्दू समाज की वस्तु-स्थिति ऐसी है कि उसके अनुयायी बहुत सारे ईश्वरों की पूजा व उपासना करते हैं और कुछ लोगों का यह भी विचार है कि हर चीज़ भगवान है। अतएव हिन्दू धर्म के हवाले से कहा जाता है कि धरती का हर कण देवता है। यह नज़रिया 'वहदतुल-वुजूद' कहलाता है। इस दर्शन को अद्वैतवाद भी कहते हैं। यानी अस्ल अस्तित्व केवल ईश्वर का है और सृष्टि के कण-कण में ईश्वर मौजूद है।

ईसाइयत (Christianity)

अब ईसाइयत को लीजिए। असूल में ईसाइयत में ईश्वर एक है, लेकिन ईश्वर का एक बेटा यानी ईसा (Jesus) को भी स्वीकार किया गया है कि यह भी ईश्वर है और एक ईश्वर Holy Ghost (जिबरील) हैं। इस धारणा को Faith of Trinity कहा गया है। इस धारणा में मौलिक आस्था के रूप में यह बात भी शामिल है कि मुक्ति के लिए ईसा (अलैहि॰) पर ईमान लाना, उनको ईश-पुत्र और ईश्वर स्वीकार करना ज़रूरी है और इनसानों के गुनाहों के प्रायश्चित के रूप में उनका सूली पर चढ़ जाना सत्य है। इस तरह ईश्वर एक भी है और तीन भी। तीन ईश्वरों के निर्धारण में भी मतभेद पाए जाते हैं। यानी पिता, पुत्र और जिबरील या पिता, पुत्र और कुमारी मरयम।

बौद्ध मत

बौद्ध मत में न ईश्वर का इक़रार है और न इनकार। बौद्ध मत सृष्टि की रचना और इनसान की पैदाइश में किसी सुपर नेचरल पावर (यानी ख़ुदा) की भूमिका को स्वीकार नहीं करता।

जैन मत

जैन मत के अनुसार सृष्टि और इनसान की रचना के लिए ईश्वर की आवश्यकता नहीं। जैन मत ईश्वर का इनकार करता है। भौतिक तत्व और जीव (आत्मा) को अनादि और अनन्त मानता है। ये दोनों धर्म (बौद्ध व जैन मत) ईश्वर की धारणा और उसके अस्तित्व को नहीं मानते।

सिख मत

सिख मत में ईश्वर की धारणा के बारे में डॉ॰ मुहसिन उसमानी लिखते हैं—

> ''वे शगुन ब्रह्मा को करतार (सृष्टा), अकाल (अनन्त), सतनाम (पवित्र नाम) जैसे विभिन्न नामों से उपासना के पात्र बताते हैं। गुरु नानक जी के बाद सिख साहित्य में वाहे गुरु का शब्द भी प्रयोग किया गया है। गुरु नानक ने अल्लाह, ख़ुदा, परवरदिगार और साहब शब्द का भी प्रयोग किया है। उन्होंने पौराणिक भक्ति में प्रयुक्त ईश्वर के विभिन्न नामों को भी प्रयोग किया है। मिसाल के तौर पर राम, गोपाल, मुरारी और नारायण आदि।''

(मुताला-ए-मज़ाहिब, डॉ॰ मुहसिन उसमानी नदवी, पृष्ठ 150-151)

सिख मत में ईश्वर, उसके अस्तित्व एवं गुणों तथा उसकी अपेक्षाओं के बारे में इससे अधिक कोई विवरण नहीं मिलता।

यहूदी धर्म

यहूदी धर्म में एक ईश्वर की धारणा है। यहूदी क़ौम ईश्वर के साथ अपने विशिष्ट सम्बन्ध का दावा करती है। उनके धार्मिक ग्रन्थ में यह बात अंकित है—

"ईश्वर ने एक बार मशहूर पैग़म्बर याक़ूब (अलैहि॰) से रात भर कुश्ती लड़ी और हार गया।"

(पैदाइश 29-24-32, पुराना और नया अह्दनामा)

इस्लाम

इस्लाम के अनुसार पूरी सृष्टि और इनसान को पैदा करनेवाला केवल और केवल एक ईश्वर है। सृष्टि और इनसान की रचना न आप-से-आप हुई है और न बहुत-से ख़ुदाओं का कोई अस्तित्व है। ईश्वर आदि से है और हमेशा बाक़ी रहनेवाली हस्ती केवल उसी की है। उसका कोई बेटा, बेटी या बीवी नहीं है। वह सभी अच्छे गुणों का मालिक है। वह किसी की मदद का मुहताज नहीं, लेकिन सब उसके मुहताज हैं। इस्लाम के अनुसार ईश्वर मात्र स्रष्टा, स्वामी, प्रभु और पालनहार ही नहीं, बल्कि वह शासक, मार्गदर्शक तथा क़ानून देनेवाला भी है।

क़ुरआन बताता है कि ईश्वर ने अपने पैग़म्बरों के ज़रिए इनसान की पूरी ज़िन्दगी के लिए क़ानून दिया है। क़ुरआन इनसान को सचेत करता है कि ईश्वर के आदेशों की अवहेलना कभी न करना और याद रखना कि मरने के बाद तुम्हें उसी के पास जाना है। वह तुमसे हिसाब लेगा और उसके बाद तुम्हारे लिए स्वर्ग या नरक का फ़ैसला करेगा। उसके व्यक्तित्व, विशेषताओं, अधिकार एवं स्वामित्व में कोई उसका साझीदार नहीं है। इस्लामी शिक्षाओं के अनुसार उन सब हैसियतों में से किसी भी हैसियत में ईश्वर के साथ किसी को साझीदार बनाना (चाहे वे फ़रिश्ते हों, महापुरुष हों, या कोई और हस्ती हो) पूरी तरह शिर्क (अनेकेश्वरवाद) है। शिर्क सबसे बड़ा गुनाह है। क़ुरआन में है–

"जान लो! आकाशों के बसनेवाले हों या ज़मीन के, सबका मालिक ईश्वर है, और जो लोग ईश्वर के सिवा कुछ (मनगढ़ंत) साझीदारों को पुकार रहे हैं वे निरे भ्रम और गुमान के पीछे चल रहे हैं और सिर्फ़ अटकलबाज़ियाँ करते हैं।"

(क़ुरआन, सूरा-10 यूनुस, आयत-66)

दूसरी जगह कहा गया है—

"और उन लोगों ने ईश्वर के कुछ शरीक क़रार दे लिए, ताकि वे उन्हें ईश्वर के रास्ते से भटका दें। (तो ऐ पैग़म्बर!) इनसे कहो, अच्छा कुछ मज़े कर लो। अन्ततः तुम्हें पलटकर जाना नरक ही में है।" (क़ुरआन, सूरा-14 इबराहीम, आयत-30)

क़ुरआन में एक और स्थान पर कहा गया है—

"ईश्वर के यहाँ बस शिर्क ही की बख़्शिश नहीं है। इसके सिवा और सब कुछ माफ़ हो सकता है, जिसे वह माफ़ करना चाहे। जिसने ईश्वर के साथ किसी को साझीदार ठहराया वह तो गुमराही में बहुत दूर निकल गया।" (क़ुरआन, सूरा-4 निसा, आयत-116)

विश्लेषण

इन बातों से स्पष्ट है कि उपरोक्त धर्मों में ईश्वर की धारणा भिन्न-भिन्न ही नहीं, बल्कि परस्पर विपरीत और विरोधी है। यहाँ तक कि ईश्वर को माननेवाले और ईश्वर को न माननेवाले दोनों तरह के धर्म पाए जाते हैं। इसके अलावा कुछ धर्म ईश्वर के अस्तित्व को मानते तो हैं, लेकिन एक से अधिक ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। इस्लाम ही अकेला एक ऐसा धर्म है जो पूरी सख़्ती और मज़बूती के साथ एक ईश्वर के अलावा किसी भी दूसरे ईश्वर के तसव्वुर का इनकार करता है।

इस वास्तविकता के सामने आने के बाद क्या एक ही समय में उन सब धर्मों को सही माना जा सकता है?

ज़ाहिर है कि इनमें से कोई एक ही धारणा सही होगी और होनी भी चाहिए। यदि हम बुद्धि और विवेक और चिन्तन-मनन के आधार पर किसी एक ईश्वर की धारणा को सही और हक़ पर मानें और शेष धारणाओं को सही न समझें तो क्या इससे दूसरे धर्मों का अपमान होता है?

यह बात तो सैद्धान्तिक रूप से सही है कि धर्मों का अपमान व अनादर न किया जाए, परन्तु जो सत्य है उसे सत्य तो कहना होगा। इसके बजाए यदि हम आग्रह करते हैं कि सभी धर्मों को सत्य समझा जाए तो इसका साफ़

मतलब यह होगा कि जो वास्तव में ईश्वर नहीं है उसको भी ईश्वर मानें और सच्चे और वास्तविक ईश्वर के बराबर समझें। जो ईश्वर नहीं है उसे ईश्वर मानना और जो सच्चा और वास्तविक और उपास्य है उसका इनकार करना ईश्वर के साथ खुली हुई उदंडता एवं अवज्ञा है। ऐसे तर्ज़े-अमल (व्यवहार) के नतीजे में मौत के बाद आनेवाली ज़िन्दगी में इनसान ईश्वर के इनाम का पात्र होगा या दंड का? यह बात आसानी से समझी जा सकती है।

(2) सृष्टि की रचना

सृष्टि की रचना किस तरह हुई है? इसका कोई स्रष्टा है कि नहीं? यदि कोई स्रष्टा है तो इस सृष्टि की रचना के बाद क्या वह कहीं छुप गया है? और उसने इस सृष्टि को दूसरों के हवाले कर दिया है? या यह कि वह केवल स्रष्टा ही नहीं, बल्कि सृष्टि के संसाधन एवं प्रबन्धन का कार्य भी वही देख रहा है और उसी का आदेश समस्त सृष्टि एवं मनुष्यों पर चलता है।

इस सृष्टि की रचना का उद्देश्य क्या है? इस सृष्टि का अंजाम क्या है? क्या यह यूँ ही हमेशा चलती रहेगी? यह और इसी प्रकार के कुछ अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विभिन्न धर्मों के दृष्टिकोण को हम यहाँ संक्षिप्त में पेश करेंगे।

● हिन्दू धर्म

हिन्दू धर्म में सृष्टि की रचना और उसकी शुरुआत के बारे में विभिन्न दृष्किोण पाए जाते हैं। मिसाल के तौर पर एक धारणा वेदों में पाई जाती है तथा कई दूसरी धारणाएँ उपनिषद्, मनुस्मृति और पुराणों में हैं। एक धारणा आर्य समाज की है। ये सभी धारणाएँ एक-दूसरे से बहुत भिन्न हैं। कुछ धारणाओं का उल्लेख नीचे किया जा रहा है।

डॉ॰ ताराचन्द अपनी किताब Influence of Islam on Indian Culture में लिखते हैं—

> "प्राचीन मौजूद हस्ती ने पानी पैदा किया जिसके अन्दर सुनहरा अंडा तैरता था। वह उसके अन्दर प्रवेश कर गया और उससे

पहला प्राणी ब्रह्मा के रूप में पैदा हुआ। तब ब्रह्मा ने देवताओं, स्वर्ग, धरती, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, पूरी सृष्टि और इनसान को पैदा किया।" यह वैदिक धारणा है।

(सृष्टि की रचना और धर्म, डॉ॰ ताराचन्द, पृष्ठ, 2-3)

वेदों में सृष्टि की रचना के बारे में निम्नलिखित बातें मिलती हैं—

"दीप्तिमान तप से यग्य और सत्य उत्पन्न हुए। इसके बाद रात और दिन पैदा हुए। इसके बाद जल से भरे हुए सागर पैदा हुए। जल से भरे हुए सागर से संवत्सर (वर्ष) पैदा हुए। पलक झपकाने में दुनिया के स्वामी ईश्वर ने दिन-रात बनाए।"

"ईश्वर ने प्राचीन काल के अनुसार सूर्य और चन्द्रमा को बनाया। इसके बाद द्युलोक, पृथ्वीलोक तथा आकाश को बनाया।"

(ऋग्वेद, 10/190/1-3)

देवी भागवत पुराण में सृष्टि की रचना के बारे में निम्नलिखित विवरण मिलते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी लिखते हैं—

"देखो, देवी भागवत में 'श्री' नामी एक देवी स्त्री जो, श्रीपुर की स्वामिनी लिखी है। उसी ने सब जगत् को बनाया और ब्रह्मा, विष्णु और महादेव को भी उसी ने रचा। जब उस देवी की इच्छा हुई तब उसने अपना हाथ घिसा। उससे हाथ में एक छाला हुआ। उसमें से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। उससे देवी ने कहा कि तू मुझसे विवाह कर। ब्रह्मा ने कहा कि तू मेरी माता है। मैं तुझसे विवाह नहीं कर सकता। ऐसा सुनकर माता को क्रोध चढ़ा और लड़के को भस्म कर दिया।"

(सत्यार्थ प्रकाश, सम्मुलास-11, पृष्ठ-216, प्रकाशक आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली-6 संस्करण 37वाँ अप्रैल 1989)

इस कहानी में आगे चलकर देवी ने विष्णु और महादेव (शिव) को जन्म दिया।

इसी प्रकार भागवत पुराण सृष्टि की रचना के बारे में क्या कहा गया

है उसको महर्षि दयानन्द सरस्वती अपनी पुस्तक सत्यार्थ प्रकाश में बयान करते हैं–

> "विष्णु की नाभि से कमल, कमल से ब्रह्मा और ब्रह्मा के दाहिने पग (पैर) के अंगूठे से स्वायंभव और बायें अंगूठे से सतरूपा रानी, ललाट से रूद्र, मरीचि आदि दस पुत्र, उनसे दस प्रजापति। उनकी तेरह लड़कियों का विवाह कश्यप से; उनमें से दिती से दैत्य, दनु से दानव, अदिति से आदित्य, विनता से पक्षी, कद्रू से सर्प, सरमा से कुत्ते, स्याल आदि और अन्य स्त्रियों से हाथी, घोड़े, ऊँट, गधा, भैंसा, घास-फूस और बबूल आदि वृक्ष काँटे सहित उत्पन्न हो गए।"
>
> (सत्यार्थ प्रकाश, सम्मुलास-11, पृष्ठ-238, संस्करण 37वाँ अप्रैल 1989, प्रकाशक आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली)

> "शिव ने इच्छा की कि मैं सृष्टि करूँ तो एक नारायण जलाशय को उत्पन्न कर उसकी नाभि से कमल और कमल में से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। उसने देखा कि सब जलमय है। जल की अंजलि उठा देख जल में पटक दी। उससे एक बुदबुदा उठा और बुदबुदे में से एक पुरुष उत्पन्न हुआ। उसने ब्रह्मा से कहा कि हे पुत्र! सृष्टि उत्पन्न कर। ब्रह्मा ने उससे कहा कि मैं तेरा पुत्र नहीं, किन्तु तू मेरा पुत्र है। उनमें विवाद हुआ और दिव्यसहस्र वर्ष पर्यन्त दोनों जल पर लड़ते रहे।"
>
> (सत्यार्थ प्रकाश, पृष्ठ-237-238, 37वाँ संस्करण, प्रकाशक : आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली)

सृष्टि की रचना के बारे में ये भिन्न-भिन्न धारणाएँ हैं जो पुराणों में बयान की गई हैं। ये धारणाएँ हमने सत्यार्थ-प्रकाश से उद्धृत की हैं। हिन्दू धर्म में सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में कोई सर्वसम्मत धारणा (अक़ीदा) नहीं मिलती।

अपनी किताब सत्यार्थ प्रकाश में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने इन पुराणों में सृष्टि की रचना के सिलसिले में जो बयान किया है, उसको असत्य बताया है। (सत्यार्थ प्रकाश, अध्याय-11, संस्करण 37वाँ, पृष्ठ-238-239)

● बौद्ध मत

बौद्ध मत में सृष्टि की उत्पत्ति के बारे में वार्ता नहीं की गई है। ऐडवर्ड कान्ज़े अपनी पुस्तक Buddhism and its Development में लिखते हैं–

"बौद्ध मत की धारणाएँ ईश्वर के अस्तित्व का स्पष्ट रूप से इनकार नहीं करतीं। परन्तु वे इस मामले में रुचि भी नहीं रखतीं कि जगत की उत्पत्ति किसने की है। बौद्ध मत की विचारधारा इस सिलसिले में यह है कि संसार के प्रत्येक प्राणियों को दुख से मुक्ति मिले और सृष्टि की रचना के सिलसिले में अटकलें समय का नष्ट करना ही नहीं, अपितु ये लोगों के बीच दुश्मनी और विवाद की वजह भी बन सकती हैं। और इस तरह दुख से मुक्ति पाने के उद्देश्य की अनदेखी भी हो सकती है।

इस तरह बौद्ध मत को माननेवाले सृष्टा के सम्बन्ध में अज्ञेयवाद (Agnosticism) का रवैया अपनाते हैं। यदि दुनिया को पैदा करनेवाले स्रष्टा की उपेक्षा इलहाद (नास्तिकता) है तो बौद्ध मत नास्तिक धर्म है।"

(पृष्ठ-41, ब-हवाला मज़ाहिब और तख़लीक़े-कायनात उर्दू, सैयद हामिद अली, पे॰ 11)

● जैन मत

जैन मत में सृष्टि की उत्पत्ति की धारणा विशुद्ध रूप से भौतिकता पर आधारित है। क्योंकि जैन मत ईश्वर के अस्तित्व का इनकार करता है। सृष्टि की रचना के बारे में निम्नलिखित उदाहरण पर विचार कीजिए–

"संसार की समस्त वस्तुएँ, और संसार के समस्त बदलाव एवं परिस्थितियाँ, चाहे अच्छी हों या बुरी, जीव के राग व द्वेष (सम्बन्धों) और पदार्थ के प्रकार एवं विशेषताओं के अनुसार बनते हैं। इसमें परमात्मा की ओर से किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं।"

(जैन धर्म और परमात्मा, पृष्ठ-36, ब-हवाला मज़ाहिब और तख़लीक़े-कायनात उर्दू, ए॰ 1989 ई॰, सैयद हामिद अली)

इसी किताब का एक और उद्धरण देखिए—

"वास्तव में संसार किसका नाम है, जीव जो आवागमन में फँसा हुआ, जन्म-मरण करता है................कभी नरक में जाता है, कभी ईंट-पत्थर, पेड़-पौधे एवं जानवर आदि बनता है। कभी मानव या देवता होता है, कभी सुखी होता है, कभी दुखी.....इसी का नाम संसार या दुनिया है और यह संसार प्रत्येक जीव अपने लिए स्वयं अपने विचारों एवं भावनाओं के अनुसार बनाता है। इस प्रकार संसार का कारण स्वयं जीव अथवा आत्मा है।"

(जैन धर्म और परमात्मा, पृष्ठ-37, ब-हवाला मज़ाहिब और तख़लीक़े-कायनात उर्दू, ए॰ 1989 ई॰, सैयद हामिद अली)

● ईसाई धर्म

ईसाई धर्म में जगत् की उत्पत्ति के बारे में बाइबल के पुराने नियम (Old Testament) की पहली किताब 'उत्पत्ति' में ये बातें मिलती हैं—

"आदि (प्रारम्भ) में परमेश्वर ने पृथ्वी और आकाश की सृष्टि की। पृथ्वी बेडौल और सुनसान पड़ी थी और गहरे जल के ऊपर अंधेरा छाया हुआ था। ईश्वर की आत्मा पानी के ऊपर मंडराती रहती थी। जब परमेश्वर ने कहा, "उजियाला हो, तो उजियाला हो गया और परमेश्वर ने उजियाले को देखा कि अच्छा है और परमेश्वर ने उजियाले को अंधेरे से अलग किया और परमेश्वर ने रौशनी को दिन कहा और अंधेरे को रात कहा और शाम हुई और सुबह हुई। इस प्रकार पहला दिन अस्तित्व में आया।"

(बाइबल, उत्पत्ति 1/1-5)

बाइबल के इसी किताब में आगे आता है—

"दूसरे दिन से लेकर छठे दिन तक परमेश्वर ने आसमान, ज़मीन और समुद्र और जो उनमें हैं, सब बनाया और सातवें दिन आराम किया।" (बाइबल, उत्पत्ति 20/8-11)

ईश्वर के बारे में धारणा यह है कि सृष्टि की रचना में ईश्वर थक गया और सातवें दिन उसे आराम करना पड़ा।

● इस्लाम धर्म

इस्लाम में सृष्टि की रचना की स्पष्ट धारणा पाई जाती है। क़ुरआन में इसका विस्तार से वर्णन किया गया है। इस्लाम के अनुसार सृष्टि, आत्मा, या पदार्थ अनादि और अनन्त नहीं है। वैज्ञानिक शोध ने इसकी पुष्टि की है।

इस्लाम के अनुसार ईश्वर अकेला सृष्टि का रचयिता है। उत्पत्ति के लिए उसे किसी पदार्थ या आत्मा की ज़रूरत नहीं थी। ईश्वर ने ज़िन्दगी की उत्पत्ति की शुरुआत पानी से की है। सृष्टि की रचना में कोई उसका साझीदार नहीं है। क़ुरआन में कहा गया है कि सृष्टि की रचना तो ईश्वर ने की है। फिर ईश्वर को छोड़कर जिन दूसरों को पूजा जा रहा है, उन्होंने क्या पैदा किया है? एक मक्खी का पैदा करना भी किसी के लिए सम्भव नहीं। क़ुरआन में है–

> "लोगो! एक मिसाल दी जाती है, ध्यान से सुनो। जिन माबूदों (उपास्यों) को तुम ख़ुदा को छोड़कर पुकारते हो वे सब मिलकर एक मक्खी भी पैदा करना चाहें तो नहीं कर सकते, बल्कि अगर मक्खी उनसे कोई चीज़ छीन ले जाए तो वे उसे छुड़ा भी नहीं सकते।" (क़ुरआन, सूरा-22 हज, आयत-73)

सृष्टि की रचना में ईश्वर (अल्लाह) को कोई थकान नहीं हुई, जिसके बाद उसे आराम करने की ज़रूरत महसूस होती। ऐसी तमाम कमज़ोरियों से वह बिलकुल पाक है। वह आदि से है और अन्त तक रहेगा।

सृष्टि की रचना के बाद ईश्वर ने उसे किसी दूसरे के हवाले नहीं कर दिया, बल्कि समस्त सृष्टि पर अकेले उसी का आदेश चलता है। उसी के बनाए हुए क़ानूनों और उसूलों के तहत सब काम कर रहे हैं।

विश्लेषण

सृष्टि की रचना के सम्बन्ध में विभिन्न धर्मों की जो धारणाएँ पेश की गई हैं उन्हें संक्षेप में ऊपर प्रस्तुत किया गया है। इन धारणाओं में सहमति और समानता ढूढ़ना सम्भव नहीं है क्योंकि उनमें स्पष्ट विरोधाभास पाया जाता है। दो धर्म तो ऐसे हैं जो ईश्वर के अस्तित्व को ही नहीं मानते। उनके नज़दीक सृष्टि की रचना में ईश्वर की कोई भूमिका नहीं है। एक धर्म के अनुसार ईश्वर ने सृष्टि की रचना की, और उस काम में वह थक गया और सातवें दिन आराम किया। एक धर्म सृष्टि की रचना के बारे में विचित्र बातें प्रस्तुत करता है, जिसके लिए बौद्धिक दलीलें पेश करना और उनकी वैज्ञानिक व्याख्या करना सम्भव नहीं है।

एक धर्म सृष्टि की रचना के सिलसिले में एक महान स्रष्टा, स्वामी, पालनहार, शासक, दयावान, कृपाशील, नियन्ता एवं प्रबन्धक ईश्वर की धारणा पेश करता है। यह धारणा ईश्वर के सदगुणों का उत्तम प्रतिनिधित्व करता है। इसके साथ ही उसमें सृष्टि की रचना के बारे में जो मार्गदर्शन किया गया है वह वैज्ञानिक तथ्यों के अनुरूप है। यह धारणा बुद्धि एवं विवेक को संतुष्ट करती है।

क्या एक ही समय में ये सभी धारणाएँ सही हो सकती हैं? क्या उन सबको मान लेना चाहिए, या उनमें से जो सही है, बुद्धि एवं तर्क, फ़ितरत और सृष्टि के चिहनों की रौशनी में विचार करके उसे स्वीकार कर लेना चाहिए।

(3) इनसानों की हिदायत व रहनुमाई का प्रबन्ध

इनसान अपने जीवन में अन्य प्राणियों की अपेक्षा हिदायत व रहनुमाई का अधिक मुहताज है। उसके लिए यह मार्गदर्शन रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा और इलाज आदि आवश्यकताओं से अधिक ज़रूरी है। ज़िन्दगी का वह मक़सद उसे मालूम होना चाहिए जिसे पूरा करने में सारी ज़िन्दगी गुज़ारी जाए। ईश्वर की इच्छा और पसन्द और उसके प्रिय मार्ग पर चलने के लिए मार्गदर्शन की ज़रूरत है। इनसान को मालूम होना चाहिए कि जीवन के

विभिन्न विभागों में ईश्वर के आदेशों पर कैसे चला जाए।

सवाल यह है कि इनसान को ज़िन्दगी के लिए मार्गदर्शन कैसे प्राप्त होता है? यह बात तो नहीं कही जा सकती कि ईश्वर ने इनसान की हिदायत और रहनुमाई की कोई व्यवस्था नहीं की है। ईश्वर की दया और न्याय जैसे सद्गुणों से तो यही अपेक्षा है कि वह इनसान की हिदायत और रहनुमाई का उचित प्रबन्ध करे।

अब तनिक विचार करें कि ईश्वर की ओर से इनसान की हिदायत व रहनुमाई के सिलसिले में विभिन्न धर्मों में क्या-क्या धारणाएँ पाई जाती हैं।

● बौद्ध मत

बौद्ध मत इनसान की हिदायत व रहनुमाई के लिए किसी परा-प्राकृतिक माध्यम की ज़रूरत महसूस नहीं करता। इनसान की ज़िन्दगी के लिए विस्तृत एवं व्यापक रहनुमाई के बजाए उसके अन्दर मात्र कुछ नैतिक शिक्षाएँ पाई जाती हैं। अर्थात ज़िन्दगी के सिलसिले में व्यापक मार्गदर्शन और सम्पूर्ण जीवन-व्यवस्था का तसव्वुर (धारणा) बौद्ध मत में नहीं पाया जाता। वहाँ संन्यासी जीवन को ही आदर्श माना गया है। ईश्वर और उसकी हिदायत व रहनुमाई से निस्पृहता (बेनियाज़ी) के नतीजे में जो रिक्तता उत्पन्न हुई उसे गौतम बुद्ध की पूजा व उपासना से पूरा किया जाता है।

● जैन मत

जैन मत के संस्थापक स्वामी महावीर इनसानी हिदायत व रहनुमाई के लिए परा-प्राकृतिक माध्यम पर यक़ीन नहीं रखते। यह मत स्पष्ट रूप से ईश्वर का इनकार करता है। इस मत में भी नैतिक शिक्षाएँ दी गई हैं। संन्यासी जीवन का बहुत महत्व बताया गया है। अर्थात् जैन मत में भी बौद्ध मत की तरह विस्तृत रहनुमाई और जीवन-व्यवस्था के लिए नियम नहीं मिलते।

जैन मत और बौद्ध मत दोनों इनसानी ज़िन्दगी के लिए हिदायत और इनसानों की मुक्ति के लिए ईश्वर और उसके पैग़म्बरों और वह्य (प्रकाशना)

की ज़रूरत को स्वीकार नहीं करते। गौतम बुद्ध और महावीर जैन की शिक्षाओं पर अमल करना ही मुक्ति का साधन माना गया है। ईश्वर की जगह दोनों धर्म के संस्थापकों की उपासना और पूजा आम है।

● हिन्दू धर्म

हिन्दू धर्म की बुनियाद यद्यपि चार वेदों पर है, लेकिन वेदों के अतिरिक्त गीता, महाभारत, उपनिषद् एवं पुराण आदि को भी महत्वपूर्ण ग्रन्थ स्वीकार किया जाता है। इस धर्म में संदेष्टा, पैग़म्बर, या वह्य (प्रकाशना) की धारणा नहीं है। कुछ लोग विभिन्न वेदों को ईश्वरीय ग्रन्थ मानते हैं। वेदों में अवतारवाद नहीं पाया जाता। परन्तु गीता एवं अन्य हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों में रहनुमाई के लिए अवतारवाद पाया जाता है।

यानी इस अक़ीदे को स्वीकार किया गया है कि ईश्वर स्वयं इनसानों की रहनुमाई करने, अन्याय को मिटाने और समाज के सुधार के लिए मानव-रूप में या किसी दूसरे रूप में पृथ्वी पर आता है।

विष्णु के अवतार रामचन्द्र जी, कृष्ण जी, परशुराम आदि स्वीकार किए गए हैं। नरसिंह (आधा मानव आधा शेर), कछुआ, सुअर और मछली आदि भी उनके अवतार स्वीकार किए गए हैं। हिन्दू धर्म के विख्यात विचारक और मार्गदर्शक जैसे प्रोफ़ेसर राधा कृष्णन, स्वामी विवेकानन्द और पंडित वेद प्रकाश उपाध्याय आदि ने स्वीकार किया है कि अवतारवाद की धारणा वेदों में नहीं है। अवतार का अर्थ ईश्वर का मानव के या किसी अन्य रूप में पृथ्वी पर अवतरित होना नहीं है। अपितु अवतार का अर्थ अवतरित या उतारा हुआ होता है। यानी ईश्वर किसी मनुष्य को अपना प्रतिनिधि बनाता है ताकि वह मनुष्यों में सुधार का कार्य करे और अन्याय, अत्याचार और बिगाड़ को दूर करे। यह व्याख्या ईशदूतत्व की धारणा से क़रीब है।

● इस्लाम धर्म

मानव जीवन के मार्गदर्शन एवं रहनुमाई के लिए इस्लाम का दृष्टिकोण इस प्रकार है–

इनसान की हिदायत व रहनुमाई के लिए ईश्वर ने बेहतरीन इन्तिज़ाम अपने पैग़म्बर भेजने का किया है। इस इन्तिज़ाम में निम्नलिखित बातें शामिल हैं–

1. इनसान हिदायत व रहनुमाई के लिए ईश्वर का ही मुहताज है। क्योंकि वही इनसान का ख़ालिक़ (स्रष्टा) है और उसके बारे में हर प्रकार का ज्ञान रखता है।

2. इनसान की हिदायत व रहनुमाई के लिए ईश्वर ने जिन पवित्र एवं सुचरित्र महापुरुषों का चयन किया वे नबी और पैग़म्बर कहलाए। इनसान के लिए अमली नमूना (आदर्श) कोई इनसान ही हो सकता है। नबी और पैग़म्बर को ईश्वर का संदेश वह्य (प्रकाशना) के माध्यम से हासिल हुआ करता था। यह संदेश ईश्वर के मार्गदर्शन और आदेशों पर आधारित होता था। नबियों और पैग़म्बरों की शिक्षाएँ विश्वसनीय, प्रामाणिक एवं निर्णायक होती थीं। क्योंकि वे ईश्वर द्वारा प्रदान किए गए ज्ञान के आधार पर अपनी बातें पेश किया करते थे। इसमें उनके किसी अनुमान, कल्पना, मनेच्छा या अभिरुचि का दख़ल नहीं होता था। इसी लिए उनकी सारी बातें प्रत्येक सन्देह से परे और सत्य पर आधारित होती थीं।

   इस बुनियाद पर पैग़म्बरों में आस्था रखना और उनका आज्ञापालन तथा अनुसरण करना उनकी क़ौमों के लिए ज़रूरी था। पैग़म्बर का इनकार वास्तव में ईश्वर का इनकार है। पैग़म्बर की आज्ञा मानना और अनुसरण करना ईश्वर का आज्ञापालन और अनुसरण है। इसी तरह पैग़म्बर की अवज्ञा वास्तव में ईश्वर की अवज्ञा है।

3. यद्यपि हरेक इनसान के अन्दर अच्छाई और बुराई, पाप और पुण्य में अन्तर करने की क्षमता रखी गई है, लेकिन यह क्षमता इनसान जैसे बुद्धिमान, विवेकशील और बाइख़्तियार प्राणी के लिए नाकाफ़ी है। इसलिए ईश्वर ने इनसान की रहनुमाई के लिए नबियों और पैग़म्बरों का एक लम्बा सिलसिला चलाया जो पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) पर समाप्त हुआ।

4. नबी और पैग़म्बर विभिन्न समुदायों एवं विभिन्न कालों में आते रहे। अन्तिम सन्देष्टा हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) हैं। हिदायत, कामयाबी और नजात के लिए नबी (सल्ल॰) को ईश्वर का पैग़म्बर स्वीकार (तस्लीम) करना है। क्योंकि पिछले नबियों और पैग़म्बरों की शिक्षाओं और उनपर अवतरित होनेवाली किताबों में इतना अधिक परिवर्तन और काट-छाँट हुई है कि उनकी मूल शिक्षाओं का पता लगाना असम्भव है।

आज पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) की शिक्षाएँ, उनकी जीवनी और उनका संदेश इतिहास के पन्नों में बिलकुल सुरक्षित है। मुहम्मद (सल्ल॰) ने यह बात बताई है कि वे कोई नया संदेश या कोई विचित्र शिक्षाएँ प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं, बल्कि पिछले नबियों और सन्देष्टाओं ने अपनी-अपनी क़ौमों को जो संदेश दिया था उसी को अन्तिम सन्देष्टा की हैसियत से सारगर्भित सटीक एवं पूर्णरूप में समस्त मानवजाति के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं।

विश्लेषण

इनसान की हिदायत और रहनुमाई की ईश्वरीय व्यवस्था के बारे में धर्मों की शिक्षाओं का यह संक्षिप्त विवेचन बताता है कि—

1. कुछ धर्म मार्गदर्शन और हिदायत के लिए ईश्वर, पैग़म्बर (सन्देष्टा) और वह्य (प्रकाशना) की ज़रूरत को नहीं मानते। उनके यहाँ मात्र कुछ नैतिक शिक्षाएँ हैं। आम तौर पर उनके यहाँ संन्यासी जीवन को आदर्श माना जाता है। एक सम्पूर्ण जीवन-व्यवस्था का कोई व्यवहारिक स्वरूप नहीं पाया जाता। आज के दौर में इनसानी समस्याओं के समाधान के लिए कोई हिदायत व रहनुमाई नहीं मिलती। इन धर्मों में नैतिक शिक्षाओं पर अमल और ब्रह्मचर्य जीवन के फलस्वरूप मोक्ष की प्राप्ति की आशा की गई है। जीवन-व्यवस्था के सम्बन्ध में यही उनकी कुल पूँजी है।
2. कुछ धर्म इनसानों की रहनुमाई के लिए ईश्वर, वह्य और ईशदूतत्व को अनिवार्य मानते हैं। परन्तु जब हम गहराई के साथ उन धर्मों का जायज़ा लेते हैं तो उनके बीच बड़ा अन्तर और मौलिक मतभेद सामने

आते हैं। मिसाल के तौर पर ईसाई धर्म में हज़रत आदम (अलैहि॰) से हज़रत ईसा (अलैहि॰) से पूर्व तक पैग़म्बरों को स्वीकार किया गया है। लेकिन हज़रत ईसा (अलैहि॰) को ईश्वरत्व में शामिल कर लिया गया है और आख़िरी पैग़म्बर (जो इसी सिलसिले की आख़िरी कड़ी हैं) का इनकार पाया जाता है और उनपर अवतरित हुई आख़िरी किताब क़ुरआन मजीद का भी इनकार कर दिया गया है। ईसाई धर्म के अनुसार हज़रत ईसा (अलैहि॰) [अल्लाह माफ़ करे] ईश्वर के पुत्र और तीन ईश्वरों में से एक ईश्वर हैं। जबकि सच्चाई यह है कि हज़रत आदम (अलैहि॰) से लेकर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) तक तमाम नबियों एवं पैग़म्बरों ने केवल एक ईश्वर की धारणा (एकेश्वरवाद) की शिक्षा दी है और अनेकेश्वरवाद से सख़्ती के साथ रोका है।

3. इस्लाम इनसानों की रहनुमाई के लिए ईश्वर की ओर से की गई व्यवस्था को ईश्वर की दया, न्याय एवं तत्वदर्शिता की अपेक्षा समझता है। अतएव इस धर्म के अनुसार ईश्वर ने पहले दिन (मनुष्य के उद्भवकाल) से आदम (अलैहि॰) और उनकी नस्ल की हिदायत व रहनुमाई के लिए निरन्तर नबियों और पैग़म्बरों को भेजा। इस्लाम में ईश्वर के तमाम सन्देष्टाओं, नबियों और आख़िरी पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) को मानना ज़रूरी है। इसी तरह पैग़म्बरों पर जो ग्रन्थ ईश्वर ने अवतरित किए थे, उन सबको मानना अनिवार्य है। परन्तु हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) से पहले आए हुए पैग़म्बरों की पुस्तकों और शरीअतों (विधानों) को रद्द किया जा चुका है। इसलिए अब हिदायत, रहनुमाई और सफलता एवं मुक्ति के लिए ज़रूरी है कि पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) की पैरवी की जाए। क़ुरआन मजीद को अपनी ज़िन्दगी के लिए हिदायत व रहनुमाई मानकर उनकी शिक्षाओं पर अमल करने से ही सफलता प्राप्त होगी।

यह समीक्षा बताती है कि धर्मों के बीच इस महत्वपूर्ण मसले पर यानी इनसानों की हिदायत व रहनुमाई के सिलसिले में सहमति नहीं पाई जाती। यह मतभेद भी सैद्धान्तिक एवं मौलिक है। इस तरह के मतभेद के बाद कोई

नहीं कह सकता कि सभी धर्म सत्य पर हैं। इनमें कोई एक धर्म ही सच्चा हो सकता। जो बुद्धि एवं विवेक के अनुरूप हो और सृष्टि में पाई जानेवाली निशानियों से मेल खाता हो। सत्य-धर्म की खोज करके उसे क़बूल करना हर उस इनसान की ज़िम्मेदारी है जो अपनी इस ज़िन्दगी में कामयाबी चाहता हो और आख़िरत की ज़िन्दगी में जहन्नम की आग से बचना चाहता हो।

(4) मौत के बाद की ज़िन्दगी

ज़िन्दगी की मूल धारणाओं के अन्तर्गत विभिन्न धर्मों की शिक्षाओं पर विचार करने से एक अहम प्रश्न यह सामने आता है कि मौत के बाद की ज़िन्दगी है या नहीं? यदि है तो वहाँ सफलता और मुक्ति की क्या शक्ल होगी? यदि ज़िन्दगी नहीं है तो फिर क्या होगा? यह कोई दार्शनिक प्रश्न नहीं है, बल्कि इस प्रश्न का इनसान के किरदार (आचरण), उसके व्यवहारिक जीवन, रवैये और कार्यशैली से गहरा सम्बन्ध है।

कुछ लोगों ने दुनिया की ज़िन्दगी को ही सब कुछ समझ लिया है और वे मौत को इनसानी ज़िन्दगी का अन्त समझते हैं। मौत के बाद उनके नज़दीक कुछ नहीं है। इस दावे का कोई प्रमाण नहीं है। कुछ लोगों का विचार है कि इस दुनिया में जो लोग विलासतापूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं, यदि मरने के बाद कोई जीवन है तो वहाँ भी वे इसी प्रकार भोग-विलास के साथ रहेंगे। इस सिलसिले में कुछ और विचार भी मौजूद हैं।

यहाँ हमें इस बात का जायज़ा लेना है कि विभिन्न धर्मों में मौत के बाद की ज़िन्दगी के बारे में जो धारणाएँ पेश की गई हैं, उनमें से किस धारणा को किस आधार पर सत्य स्वीकार किया जा सकता है?

हिन्दू मत, बौद्ध मत, जैन मत और सिख मत सभी में मौत के बाद की ज़िन्दगी के लिए आवागमण की धारणा पाई जाती है। हिन्दू मत की धारणा को तय करने में कठिनाई यह आती है कि वेदो में आवागमण का उल्लेख नहीं है, बल्कि पारलौकिक जीवन में कर्मों के पूछ-गच्छ और फिर स्वर्ग-नरक की कल्पना प्रस्तुत की गई है। वेदों में पितृलोक को आलमे-बरज़ख़ कह सकते हैं। वेदों में स्वर्ग एवं नरक का भी विस्तार से विवरण मिलता है।

लेकिन गीता और पुराणों में आवागमण का उल्लेख मिलता है। आवागमण का मतलब यह है कि मृत्यु के बाद कर्मों के आधार पर मनुष्य नया जन्म पाएगा।

इस नए जन्म में वह इनसान, जानवर, कुत्ता, बिल्ली, भैंस, बैल, बकरी, गाय, कीड़ा-मकोड़ा, घास-फूस, सब्ज़ी आदि या इनसान वग़ैरा के रूप में जन्म ले सकता है और यह इस बात पर निर्भर करता है कि उसने कैसा कर्म किया है। जन्म और मृत्यु का यह क्रम चौरासी (84) लाख योनियों को ग्रहण करने तक चलता रहता है। इसके बाद ही मुक्ति मिलेगी। मुक्ति का नया रूप क्या होगा? और वह किस तरह हासिल होगी? इसके बारे में सहमति नहीं पाई जाती।

ईसाई धर्म में मौत के बाद की ज़िन्दगी की धारणा पाई जाती है। सफलता और मुक्ति के लिए सांसारिक जीवन में ईसा मसीह को ईशपुत्र मानकर सूली पर चढ़ाए जाने के अक़ीदे को स्वीकार करना ज़रूरी है। इसके लिए जीवन में धार्मिक नियमों का पालन अनिवार्य नहीं। बल्कि इस अक़ीदे (धारणा) के साथ धार्मिक नियमों के रद्द होने की धारणा पाई जाती है। स्वर्ग और नरक की कल्पना भी पाई जाती है।

इस्लाम में मौत के बाद की ज़िन्दगी के सिलसिले में स्पष्ट शिक्षाएँ मिलती हैं। यह इस्लाम का तीसरा बुनियादी अक़ीदा (धारणा) कहलाता है। यानी आख़िरत का अक़ीदा।

इस अक़ीदे के अनुसार इनसान अपने सांसारिक जीवन के लिए ईश्वर के सामने उत्तरदायी है। ईमान और नेक आमाल (कर्मों) की बुनियाद पर पुरस्कार स्वरूप स्वर्ग मिलेगा और झूठे विश्वास और बुरे कामों के आधार पर दण्ड और प्रकोप से दोचार होना पड़ेगा। कोई सिफ़ारिश या दोस्ती काम नहीं आएगी। ईश्वर का दो-टूक एवं निष्पक्ष न्याय होगा। क़ियामत (महाप्रलय) के दिन समस्त मानव-जाति को ईश्वर के सामने उपस्थित होकर उपरोक्त अंजाम से दोचार होना पड़ेगा। क़ुरआन में कहा गया है–

"क़ियामत (प्रलय) के दिन वह (ईश्वर) तुम सबको ज़रूर इकट्ठा

करेगा। यह बिलकुल एक असंदिग्ध वास्तविकता है। परन्तु जिन लोगों ने अपने आपको ख़ुद बर्बादी के जोखिम में डाल दिया है, वे इसे नहीं मानते।" (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-12)

"नुक़सान में पड़ गए वे लोग जिन्होंने ईश्वर से अपनी मुलाक़ात की सूचना को झूठ क़रार दिया। जब अचानक वह घड़ी आ जाएगी तो यही लोग कहेंगे, अफ़सोस, हमसे इस बारे में कैसी ग़लती हुई! और उनका हाल यह होगा कि अपनी पीठों पर अपने गुनाहों का बोझ लादे हुए होंगे। देखो! कैसा बुरा बोझ है जो ये उठा रहे हैं! दुनिया की ज़िन्दगी तो एक खेल और एक तमाशा है। वास्तव में आख़िरत ही की जगह उन लोगों के लिए बेहतर है जो नुक़सान से बचना चाहते हैं। फिर क्या तुम लोग अक़्ल से काम न लोगे?" (क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयतें-31-32)

मुर्दों को दोबारा ज़िन्दा करने के बारे में क़ुरआन कहता है–

"और ईश्वर की निशानियों में से एक यह है कि तुम देखते हो कि ज़मीन सूनी पड़ी है, फिर ज्यों ही हमने (ईश्वर ने) उसपर पानी बरसाया, वह अचानक भभक उठती है और फूल जाती है। यक़ीनन जो ख़ुदा (ईश्वर) इस मरी हुई ज़मीन को जिला उठता है, वह मुर्दों को भी ज़िन्दगी बख़्शनेवाला है। निस्सन्देह उसे हर चीज़ का सामर्थ्य प्राप्त है।"

(क़ुरआन, सूरा-41 हा-मीम-सजदा, आयत-39)

आख़िरत (परलोक) में क्या होगा? इस बारे में क़ुरआन में विस्तार से रौशनी डाली गई है। एक जगह कहा गया है–

"और डरो उस दिन से जब कोई किसी के तनिक भी काम न आएगा, और न किसी की ओर से सिफ़ारिश क़बूल होगी, और न किसी को 'फ़िदिया' (अर्थदण्ड) लेकर छोड़ा जाएगा और न अपराधियों को कहीं से मदद मिल सकेगी।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-48)

"क़ियामत के दिन न तुम्हारी नातेदारियाँ किसी काम आएँगी और न तुम्हारी सन्तान। उस दिन ईश्वर तुम्हारे बीच जुदाई डाल देगा, और वही तुम्हारे आमाल (कर्मों) को देखनेवाला है।

(क़ुरआन, सूरा-60 मुम्तहिना, आयत-3)

"उस दिन आदमी अपने भाई और अपने माँ-बाप और अपनी बीवी और अपनी सन्तान से भागेगा। उनमें से हर व्यक्ति पर उस दिन ऐसा समय आ पड़ेगा कि उसे अपने सिवा किसी का होश न होगा।" (क़ुरआन, सूरा-80 अ-ब-स, आयतें—34-37)

विश्लेषण

मौत के बाद की ज़िन्दगी के बारे में विभिन्न धर्मों की शिक्षाओं के इस विशलेषण के बाद निम्नलिखित निष्कर्ष सामने आते हैं—

1. धर्मों की मौलिक धारणाओं में अत्यधिक मतभेद और नुमायाँ अन्तर पाया जाता है। इन विचारों में परस्पर सहमति नहीं है।
2. एक ही समय में ये सारी धारणाएँ सही और हक़ पर नहीं हो सकतीं। इनमें से जो धारणा सही और सत्य पर है उसकी खोज ज़रूरी है।
3. दुनिया में इनसान का अक़ीदा और उसके व्यवहारिक जीवन की दिशा, उसका रवैया, उसकी कार्यशैली, उसके मामलात, ईश्वर और उसके बन्दों के अधिकारों एवं कर्तव्यों के बारे में उसकी आमादगी इन्हीं धारणाओं के स्वीकार या इनकार पर निर्भर है। विभिन्न धारणाओं के अधीन भिन्न-भिन्न सामाजिक एवं नैतिक नमूने अस्तित्व में आते हैं।

उपरोक्त मौलिक धारणाओं के अतिरिक्त कुछ और बिन्दुओं पर भी धर्मों के बीच मतभेद हैं। मिसाल के तौर पर निम्न बिन्दुओं का उल्लेख किया जा सकता है—

- इनसान की ज़िन्दगी का मक़सद
- इबादत के तौर-तरीक़े
- इनसानी बराबरी

विभिन्न धर्मों के इन मतभेदों से अवगत होने के बाद कोई नहीं कह सकता कि इनमें से किसी धर्म को अपनाना, समान रूप से सही और सत्य होगा और इनमें से किसी के भी अनुसार अमली ज़िन्दगी बसर करके इनसान ख़ुदा को राज़ी और ख़ुश कर सकता है।

महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि इन विभिन्न धारणाओं में से कौन-सी धारणा ईश्वर द्वारा प्रदान की गई है जिसे अपनाने से वह बन्दों से राज़ी और ख़ुश होगा। इसकी खोज एवं शोध तर्क, बुद्धि एवं विवेक की बुनियाद पर करना हर इनसान की ज़िम्मेदारी है। इस शोध के परिणाम भी स्वयं उसी के हिस्से में आएँगे। जो धारणाएँ इनसानों या किसी समुदाय द्वारा किए गए हैं, सम्भव है उनको अपनाना ज़ाहिर में किसी न किसी धर्म पर अमल करना समझा जाएगा, लेकिन विचार करना चाहिए कि क्या यह रवैया ख़ुदा से बग़ावत और उसकी नाफ़रमानी का नहीं है?

इस विचार-शैली के फलस्वरूप, जो अपने आप में गंभीर नहीं है, इनसान संसार में सुख, शान्ति, सम्पन्नता एवं सुकून कैसे पा सकता है? और परलोक में सफलता और मुक्ति उसे कैसे प्राप्त हो सकती है?

'सभी धर्म समान हैं' का एक महत्वपूर्ण पहलू

'सभी धर्म समान हैं' पर एक और महत्वपूर्ण पहलू से विचार करना आवश्यक है। धार्मिक ग्रन्थों से यह महत्वपूर्ण सच्चाई भी सामने आती है कि ईश्वर ने सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, आकाश, हवा-पानी, पेड़-पौधे और जानवर आदि को तमाम इनसानों की भलाई और उनके इस्तेमाल के लिए बनाया है। इन नेमतों को किसी विशेष समुदाय या जाति के लिए ख़ास नहीं किया है, बल्कि उन्हें सबके फ़ायदे के लिए आम कर दिया है।

अतएव हम देखते हैं कि तमाम इनसान, चाहे वे कम संख्या के (अल्पसंख्यक) हों, या अधिक संख्या के (बहुसंख्यक), किसी भी रंग, वर्ग, भाषा या क्षेत्र के हों, अमीर हों या ग़रीब, शिक्षित हों या अशिक्षित, सभी इन नेमतों से फ़ायदा उठा रहे हैं। क्योंकि वे नेमतें मानव-जीवन को बाक़ी रखने और उसके विकास के लिए ज़रूरी हैं। मानो ईश्वर ने मानव-जीवन की इन भौतिक एवं शारीरिक आवश्यकताओं को बिना किसी भेद-भाव के सबको प्रदान किया है। यदि वह किसी को वंचित (महरूम) रखता तो यह उसके न्याय, दया, तत्वदर्शिता के विरुद्ध होता। लेकिन उसने ऐसा नहीं किया।

अब विचार कीजिए! इनसान की सिर्फ़ यही ज़रूरतें तो नहीं हैं, बल्कि उसकी आध्यात्मिक एवं नैतिक ज़िन्दगी उसकी भौतिक एवं शारीरिक ज़िन्दगी से अधिक महत्वपूर्ण है। इस सिलसिले में इनसान हिदायत व रहनुमाई (धर्म) का अधिक मुहताज है।

क्या ऐसा सम्भव है कि ईश्वर एक विशेष समुदाय या वर्ग को धर्म-प्रदान करके शेष मानव-जाति को वंचित रखे? ऐसा हरगिज़ नहीं हो सकता। अगर ऐसा होता तो यह बहुत बड़ा अन्याय होता। ईश्वर तो बड़ा न्याय करनेवाला है। वह किसी पर ज़रा भी ज़ुल्म नहीं करता। इसलिए यह मानना पड़ेगा कि उसने इनसान की हिदायत व रहनुमाई के लिए जो भी धर्म प्रदान किया है,

वह किसी एक समुदाय, या जाति, या वर्ग, या देश के लिए नहीं, बल्कि सारे इनसानों को प्रदान किया है। जिस तरह उसकी उपरोक्त नेमतों पर किसी एक समुदाय या वर्ग का एकाधिकार नहीं है, उसी प्रकार उसकी हिदायत व रहनुमाई (मार्गदर्शन) पर भी किसी एक का कोई एकाधिकार नहीं है।

ईश्वर द्वारा प्रदान की गई नेमतों की गिनती सम्भव नहीं है। इनमें इनसानों के लिए अनगिनत लाभ हैं। उसकी हिदायत व रहनुमाई भी, हर इनसान के लिए जो उसे अपनाता है, अत्यधिक फ़ायदे अपने अन्दर रखती है और हर तरह के नुक़सान और दंगा-फ़साद से उसे बचाती है। ईश्वर की प्रदान की हुई नेमतों में बन्दों के लिए उसकी हिदायत व रहनुमाई (यानी धर्म) सबसे बड़ी और क़ीमती नेमत है, जिसको स्वीकार कर लेने से अम्न व सुकून, सुख एवं शान्ति, विकास एवं निर्माण हासिल होता है और इनसान अशान्ति, उपद्रव, एवं बिगाड़ से सुरक्षित रहता है।

ईश्वर की यह हिदायत व रहनुमाई आज कहाँ है? किनके पास है? जिनके पास भी यह नेमत है, वह उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं है, बल्कि वह इनसानियत की अमानत (धरोहर) है। जिन लोगों के पास यह नेमत मौजूद है, उनकी ज़िम्मेदारी है कि वे दिल से उसकी क़द्र करें और उसे अपनाकर अपनी ज़िन्दगियों को सफल बनाएँ और साथ ही उसको दूसरों तक पहुँचाएँ। यानी उसे इनसानों के लिए आम कर दें। क्योंकि वे न उसके स्वामी या मालिक हैं, न ठेकेदार, बल्कि सिर्फ़ अमानतदार (Custodian) हैं। इसमें कोताही करने पर उन लोगों या समुदायों से आख़िरत (परलोक) में सख़्त पूछ-गच्छ होगी जिनके पास आज दुनिया में हिदायत व रहनुमाई है।

अब विचार कीजिए कि यह हिदायत व रहनुमाई कहाँ है? सबसे पहले तो हमें यह देखना चाहिए कि दुनिया के धर्मों में क्या किसी धर्म ने यह दावा किया है कि वह अकेले ईश्वर की ओर से है और सारे इनसानों के लिए है? उस धर्म की किताब या किताबों में जो हिदायतें व रहनुमाई पाई जाती हैं, क्या वह उस दावे की पुष्टि करती हैं? क्या उसकी शिक्षाएँ सर्वभौमिक, सर्वकालिक एवं सैद्धान्तिक हैं?

पिछले पन्नों में सच्चे धर्म की जिन विशिष्टताओं का उल्लेख किया जा

चुका है, क्या वे विशिष्टताएँ उस धर्म में पाई जाती हैं? दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि मानव-इतिहास में उस धर्म को क्या किसी व्यक्ति की ओर सम्बद्ध किया गया है? या वह सदैव इस बात का दावेदार रहा है कि वह ईश्वर की ओर से है?

एक और प्रश्न यह है कि इसको प्रस्तुत करनेवाले व्यक्ति और व्यक्तियों ने क्या उस धर्म को अपने अस्तित्व एवं व्यक्तित्व से सम्बद्ध करके प्रस्तुत किया, या इसके विपरीत यह दावा किया कि वह अपनी ओर से नहीं, बल्कि ईश्वर की ओर से उसे प्रस्तुत कर रहे हैं? और यह भी देखना होगा कि दावा करनेवाले कैसे लोग थे? क्या ये सच्चे ईशभक्त एवं पुनीत आत्मा थे? क्या वे इनसानों की अच्छाई व भलाई तथा सफलता एवं कल्याण के लिए कार्य करनेवाले थे? या उनका अपना व्यक्तिगत स्वार्थ इस धर्म की ओर इनसानों को बुलाने में छिपा हुआ था? क्या वे कहते थे कि हम तुम्हारे शुभचिन्तक हैं? हम कोई इनाम या पुरस्कार तुमसे नहीं माँगते और ईश्वर के आदेश से तुम्हारी सफलता और मुक्ति के लिए यह सन्देश और शिक्षा तुम तक पहुँचा रहे हैं। हमारा निस्स्वार्थ और निर्लोभ होना हमारे सन्देश की सबसे बड़ी दलील है। हम तुम्हें दावत देने से पहले उस शिक्षा पर ख़ुद भी अमल करते हैं। हमारा बदला ईश्वर हमें देगा। तुम आँखें बन्द करके इसको स्वीकार करने या इनकार करने का तरीक़ा मत अपनाओ, बल्कि ख़ूब विचार-विमर्श करने और अपनी सफलता और मुक्ति की ख़ातिर स्वतंत्र फ़ैसला करो।

आज इनसान की गंभीर समस्याएँ और उसकी बिगड़ी हुई सामाजिक परिस्थितियाँ बता रही हैं कि इनसानों द्वारा गढ़े गए धर्म एवं विचारधाराएँ सब विफल हो चुकी हैं। इनसान संकटों से घिरा हुआ है। उसका जीवन अजीर्ण हो चुका है। मानव-जाति की समस्याओं का निवारण सिर्फ़ ईश्वरीय विधान तथा ईश्वरीय फ़ारमूलों से ही हो सकता है।

इसलिए इनसान को चाहिए कि किसी नए धर्म या विचारधारा को गढ़ने के बजाए ईश्वर के सच्चे धर्म की खोज करे और अपने जीवन में उसे स्वीकार करे। इसके बाद ही उसके जीवन का संकट समाप्त होगा और वह

सफल जीवन व्यतीत करके पारलौकिक जीवन में मुक्ति और ईश्वर की प्रसन्नता प्राप्त करके नरक के प्रकोप से सुरक्षित रह सकेगा।

क़ुरआन की रहनुमाई

सभी धर्मों के हक़ पर होने या न होने के बारे में क़ुरआन की रहनुमाई (मार्गदर्शन) बहुत महत्वपूर्ण है। इसपर विचार करने की आवश्यकता है।

क़ुरआन आज से 1450 साल पहले हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पर अवतरित हुआ। आप (सल्ल०) क़ुरआन के लेखक नहीं हैं। क़ुरआन में शुरू से आख़िर तक यही बताया गया है कि उसे ईश्वर ने अवतरित किया है। यह चुनौती भी दी गई है कि जो लोग इसे ईश्वरीय वाणी और ईश्वरीय ग्रन्थ (अल्लाह की किताब) नहीं मानते वे इस जैसी एक छोटी-सी सूरा (अध्याय) ही बनाकर दिखाएँ।

क़ुरआन ने एक ख़ास बात यह बताई है कि पिछले ग्रन्थों में जो ईश्वर की ओर से उतारे गए थे, उनमें कोई भी सुरक्षित नहीं रहा। उन ग्रन्थों के अनुयायिओं ने उन ग्रन्थों में अपनी मनगढ़ंत व्याख्याओं को शामिल कर दिया, बहुत-सी बातों को हटा दिया और बहुत-सी बातों को अपनी ओर से बढ़ा दिया। अब उनके माध्यम से ईश्वर की मूल शिक्षाएँ मालूम नहीं की जा सकतीं।

परन्तु क़ुरआन न केवल सुरक्षित है, बल्कि पिछले ग्रन्थों की मूल शिक्षाओं का सार भी उसमें मौजूद है और उसमें उनको परखने की कसौटी भी मौजूद है। इसी लिए पिछले ईश्वरीय ग्रन्थों पर ईमान (विश्वास) तो लाया जाएगा, लेकिन व्यवहार में उनसे मार्गदर्शन प्राप्त नहीं किया जा सकता। बल्कि अब केवल क़ुरआन ही अकेला ईश्वरीय ग्रन्थ है जिससे हिदायत व रहनुमाई हासिल की जा सकती है।

मानव-जाति के लिए धर्म के सिलसिले में क़ुरआन की निम्नलिखित रहनुमाई पर विचार करना चाहिए।

"ईश्वर के नज़दीक धर्म सिर्फ़ इस्लाम (ईश-आज्ञापालन) है।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-19)

"अब क्या ये लोग ईश्वर की पैरवी का तरीक़ा छोड़कर कोई और तरीक़ा चाहते हैं, हालाँकि आसमान और ज़मीन की सारी चीज़ें चाहे-अनचाहे ईश्वर के आदेशानुसार चल रही हैं और सबको उसी की ओर पलटना है।"

(क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-83)

"इस्लाम (ईश-आज्ञापालन) के सिवा जो व्यक्ति कोई और तरीक़ा अपनाना चाहे, उसका वह तरीक़ा कदापि स्वीकार न किया जाएगा और आख़िरत (परलोक) में वह नाकाम व असफल रहेगा।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-85)

"आज मैंने (ईश्वर ने) तुम्हारे धर्म को तुम्हारे लिए मुकम्मल कर दिया और तुमपर अपनी नेमत (अनुकम्पा) पूरी कर दी और तुम्हारे लिए इस्लाम (ईश-आज्ञापालन) को तुम्हारे दीन (धर्म) के रूप में स्वीकार कर लिया।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-3)

क़ुरआन और पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) के कथनों से यह मालूम होता है कि इस्लाम इनसानों के लिए ईश्वर का प्रदान किया हुआ धर्म है। इसका संस्थापक कोई इनसान, पैग़म्बर अथवा नबी नहीं है। यहाँ यह ग़लतफ़हमी न हो कि इस्लाम धर्म की शुरुआत आज से 1450 साल पहले अरब में पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) के आगमन से हुआ। या पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) इस दीन के संस्थापक हैं, बल्कि ज़मीन पर पैदा होनेवाले पहले इनसान हज़रत आदम (अलैहि॰) और उनकी सन्तानों को ईश्वर ने पहले दिन से ही यह धर्म प्रदान किया था। उसी दीन को व्यापकता एवं पूर्णता के साथ पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल॰) को अन्तिम रूप में प्रदान किया गया।

इस्लाम के दो अर्थ हैं : एक अमून व शान्ति और दूसरा अपने आप को ईश्वर की इच्छा के अधीन कर देना। मुस्लिम ईश्वर की मुकम्मल पैरवी और पूर्ण समर्पण करनेवाले को कहते हैं। इस्लाम कोई नस्ली या क़ौमी धर्म नहीं है।

इस्लाम के विपरीत जो कार्य-शैली है वह अधर्म और ईश्वर से बग़ावत

है। इस संदर्भ में क़ुरआन की कुछ और आयतें नीचे दी जा रही हैं।

> "यक़ीन रखो, जिन लोगों ने कुफ़्र (अधर्म) को अपनाया और अधर्म की हालत में ही मरे, उनमें से कोई अगर अपने आप को सज़ा से बचाने के लिए ज़मीन भरकर भी सोना बदले में (अर्थदण्ड) दे तो उसे स्वीकार नहीं किया जाएगा। ऐसे लोगों के लिए दर्दनाक सज़ा तैयार है और वे अपना कोई मददगार न पाएँगे।" (क़ुरआन, सूरा-3 आले-इमरान, आयत-91)

क़ुरआन में दूसरी जगह आया है—

> "जिन लोगों ने कुफ़्र (इनकार) का रास्ता अपनाया है, उनके लिए दुनिया की ज़िन्दगी बड़ी महबूब (प्रिय) और मन को भानेवाली बना दी गई है। ऐसे लोग ईमानवालों की हँसी उड़ाते हैं, मगर क़ियामत के दिन परहेज़गार लोग ही उनके मुक़ाबले में ऊँचे स्थान पर होंगे। रही दुनिया की रोज़ी, तो ईश्वर को अधिकार है जिसे चाहे बेहिसाब प्रदान करे।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-212)

अन्य धर्म किस तरह अस्तित्व में आए

कुछ धर्म ऐतिहासिक शख़सियतों से जुड़े हुए हैं, जैसे बौद्ध धर्म, जैन धर्म आदि। बौद्ध धर्म के संस्थापक महात्मा गौतम बुद्ध हैं और जैन धर्म के संस्थापक महावीर जैन हैं।

इन धर्मों को अस्तित्व में आए लगभग ढाई हज़ार वर्ष चुके हैं और आज हम इस स्थिति में नहीं है कि उनके वास्तविक संदेशों और शिक्षाओं को जान सकें। इन दोनों महान विभूतियों ने क्या वास्तव में यह शिक्षा दी थी कि सृष्टि और इनसान का कोई स्रष्टा नहीं है? उसने इनसानों की हिदायत और रहनुमाई के लिए कोई व्यवस्था नहीं की? अतएव हम व्यवहार में यह देखते हैं कि बौद्ध मत और जैन मत के अनुयायिओं में ईश्वर से बेनियाज़ी बरतने के बाद गौतम बुद्ध और महावीर जैन को ही व्यवहारतः ईश्वर बना दिया गया है। उनकी मूर्तियों और प्रतिमाओं की पूजा की जाती

है। उनसे वैसा ही प्रेम और आस्था रखी जाती है जैसी ईश्वर के साथ होनी चाहिए। उनसे प्रार्थनाएँ भी की जाती हैं और आशाएँ भी उन्हीं से बाँधी जाती हैं।

इस बात पर भी विचार करने की ज़रूरत है कि यह दोनों धर्म ढाई हज़ार साल पहले से मौजूद हैं। तो इससे पहले जो इनसान ज़मीन पर आबाद थे, उनकी हिदायत व रहनुमाई की क्या व्यवस्था थी? उनके लिए कौन-सा धर्म था जिसपर लोग चलते थे? यद्यपि जैन मत में यह दावा किया गया है कि चौबीस तीर्थांकर गुज़र चुके हैं और जैन धर्म सबसे प्राचीन और इनसानों का प्रथम धर्म है। लेकिन इस दावे के लिए कोई सुबूत नहीं दिया जा सकता।

गौतम बुद्ध और महावीर जैन दोनों ऐतिहासिक दृष्टि से इनसान थे। इनसानों के सारे गुण–खाना, पीना, सोना, जागना, सेहत, बीमारी और मौत आदि को उनके जीवन में देखा जा सकता है। इन समस्त गुणों के होते हुए उन्हें ईश्वर कैसे कहा जा सकता है? फिर इन दोनों महापुरुषों ने यह नहीं कहा कि वे स्वयं ईश्वर हैं, उनकी पूजा अर्चना की जाए, या उनसे प्रार्थनाएँ की जाएँ।

अब देखें कि ईसाइयत कैसे अस्तित्व में आई? ईसाई धर्म की मूल आस्थाओं का उल्लेख हो चुका है। क्या उन आस्थाओं के साथ बाइबल में ईसाई धर्म की कोई कल्पना पाई जाती है? इसका उत्तर नहीं में है। यह बात बहुत मशहूर है कि पैग़म्बर ईसा (अलैहि॰) के लगभग सत्तर या सौ साल के बाद सेन्ट पॉल ने वर्तमान ईसाई धर्म की बुनियाद डाली और उसे पैग़म्बर ईसा (अलैहि॰) से जोड़ दिया।

बाइबल के अनुसार पैग़म्बर ईसा (अलैहि॰) स्वयं एक ईश्वर की उपासना करते थे। उन्होंने तीन ईश्वर की कोई धारणा प्रस्तुत नहीं की थी। 325 ई॰ में नीक़िया की कौंसिल रोम के बादशाह की अध्यक्षता में रखी गई थी। इसमें ईसाई धर्म के धर्मगुरुओं ने पैग़म्बर ईसा (अलैहि॰) को ईश्वर का पुत्र और खुद उनको ईश्वर मानने की घोषणा की और इसी आस्था को

सरकारी धारणा मान लिया गया। 325 ई॰ से पहले पैग़म्बर ईसा (अलैहि॰) के बारे में इसपर सहमति नहीं पाई जाती थी कि वे ईश-पुत्र हैं और तीन ईश्वरों में से एक ईश्वर हैं।

इसी तरह यहूदी धर्म पैग़म्बर मूसा (अलैहि॰) से जोड़ दिया गया है। लेकिन Old Testament में पैग़म्बर मूसा (अलैहि॰) किसी नए धर्म के संस्थापक नज़र नहीं आते, बल्कि वे एक ईश्वर की बन्दगी और उसके आदेशों पर चलने की दावत देते हैं। पैग़म्बर मूसा (अलैहि॰) के बाद उनके अनुयायिओं ने एक नया धर्म गढ़कर उनसे जोड़ दिया जो आज यहूदियत (यहूदी धर्म, Judaism) के नाम से जाना जाता है।

फ़ैसला इनसानों के हाथ में है

क़ुरआन के अनुसार ईश्वर के नज़दीक जो धर्म स्वीकार्य है, वह ईश-आज्ञापालन है। ईश्वर ने इनसानों को बहुत-से धर्म नहीं दिए हैं, बल्कि एक ही धर्म दिया है, और वह है ईश्वर के प्रति समर्पित हो जाने का धर्म यानी 'इस्लाम'। उसने यह नहीं कहा है कि किसी भी धर्म पर चलो तुमसे वह प्रसन्न हो जाएगा, बल्कि यह पहले ही विस्तार से बताया जा चुका है कि धर्म किस तरह अस्तित्व में आए अथवा निष्पादित किए गए। दुनिया की कामयाबी, उन्नति, ख़ुशहाली और आख़िरत में नजात तो इनसानों को एक ऐसे धर्म में ही मिलेगी जिसे ईश्वर की स्वीकृति प्राप्त हो। अलबत्ता किसी भी इनसान को इसे अपनाने पर मजबूर नहीं किया जा सकता। लालच या ज़ोर-ज़बरदस्ती से धर्म को क़बूल नहीं कराया जा सकता। इस सम्बन्ध में क़ुरआन में स्पष्ट संदेश मौजूद हैं, जो ये हैं—

1. "दीन में कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं है।"
(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-256)

2. "(ऐ पैग़म्बर) साफ़ कह दो कि यह सत्य है तुम्हारे रब (प्रभु) की ओर से। जिसका जी चाहे उसे मान ले, जिसका जी चाहे इनकार कर दे।" (क़ुरआन, सूरा-18 कहफ़, आयत-29)

3. "हमने (ईश्वर ने) उसे रास्ता दिखा दिया चाहे वह शुक्र करने-वाला बने या नाशुक्री करनेवाला।"

(क़ुरआन, सूरा-76 दह्र, आयत-3)

इससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि क़ुरआन इस्लाम को ईश्वरीय धर्म कहता है, लेकिन इसको स्वीकार करने या इनकार करने का पूरा अधिकार और आज़ादी हर इनसान को देता है। इस अधिकार और आज़ादी को कोई छीन नहीं सकता। अलबत्ता वह इनसान को साफ़ तौर पर बता देता है कि इस्लाम के अलावा कोई दूसरा धर्म ईश्वर स्वीकार नहीं करेगा। इस दुनिया में ईश-धर्म को छोड़कर किसी दूसरे धर्म पर चलने का नतीजा गुमराही, बद-अमनी, अशान्ति, उपद्रव, बिगाड़, अन्याय और ज़ुल्म के रूप में सामने आएगा। इस जीवन के बाद परलोक (आख़िरत) में भी इनसान को ज़बरदस्त नाकामी और जहन्नम (नरक) की आग का सामना होगा।

इस विवरण के बाद सवाल यह पैदा होता है कि अन्य धर्मों और उनके अनुयायिओं के बारे में इस्लाम की शिक्षा क्या है? क्या अन्य धर्मों को इस्लाम अपना शत्रु और विरोधी समझता है और उन धर्मों के अनुयायिओं को अपना शत्रु क़रार देता है? क्या उनकी ज़िन्दगी और आस्था के सिलसिले में इनसानी आज़ादी से वंचित करता है? या वह हर इनसान के बुनियादी अधिकारों की रक्षा की ज़मानत देता है और उन्हें आस्था और कर्म की आज़ादी देता है? अतएव इस सम्बन्ध में आगे कुछ विवरण प्रस्तुत किए जाएँगे।

एक महत्वपूर्ण सच्चाई

अब तक की गई वार्ता से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि ईश्वर की ओर से पैग़म्बरों और नबियों के ज़रिए शुरू से ही इनसानों को एक ही धर्म प्रदान किया गया था। उसपर अमल भी होता रहा, लेकिन उसके बाद लोगों ने विभिन्न कारणों से आपस में मतभेद पैदा किए और विभिन्न धर्म गढ़ लिए। क़ुरआन की निम्नलिखित आयतें इस सच्चाई पर रौशनी डालती है—

"शुरू में सब लोग एक ही तरीक़े पर थे। (फिर यह हालत बाक़ी

न रही और मतभेद उभरने लगे)। तब ईश्वर ने पैग़म्बर भेजे जो सीधे रास्ते पर चलनेवालों को ख़ुशख़बरी सुनाते और टेढ़ी चाल चलनेवालों को डराते थे, और उनके साथ सत्य पर आधारित किताब उतारी, ताकि सत्य के बारे में लोगों के बीच जो मतभेद उभर आए थे, उनका फ़ैसला करे। (और उनके बीच मतभेदों के पैदा होने की वजह यह न थी कि शुरू में लोगों को सत्य बताया न गया था।) विभेद उन लोगों ने किया, जिन्हें सत्य का ज्ञान दिया जा चुका था। उन्होंने खुली निशानियाँ पाने के बाद केवल इसलिए सत्य को छोड़कर विभिन्न तरीक़े अपनाए कि वे आपस में ज़्यादती करना चाहते थे। अतः जो लोग पैग़म्बरों पर ईमान ले आए उन्हें ईश्वर ने अपनी अनुज्ञा से उस सत्य का रास्ता दिखाया जिसमें लोगों ने इख़्तिलाफ़ (विभेद) किया था। ईश्वर जिसे चाहता है, सीधा रास्ता दिखा देता है।"

(क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयत-213)

धर्मों के बीच संवाद (Interfaith Dialogue)

विभिन्न धर्मों के अनुयायिओं के बीच एक-दूसरे को समझने-समझाने और सही स्थिति से अवगत होने के लिए "धर्मों के बीच संवाद" शीर्षक से प्रोग्राम आयोजित किए जाते हैं। ऐसे प्रोग्राम को "सर्वधर्म सम्मेलन" (Inter Religious Conference) भी कहा जाता है। इस तरह के प्रोग्राम ऐसे देशों या राष्ट्रों के लिए जहाँ कई धर्म के माननेवाले लोग रहते हों ज़रूरी हैं। इससे शान्ति के साथ रहने, इनसानी भाईचारा क़ायम करने और सद्भाव का वातावरण बने रहने में मदद मिलती है। हमारे विचार में "धर्मों के बीच संवाद" के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिएँ—

(1) विभिन्न धर्मों के अनुयायिओं के बीच नज़दीकी बढ़े, ग़लत-फ़हमियाँ दूर हों, और वे एक-दूसरे के नज़दीक आएँ।

(2) ऐसे मानवीय मूल्यों को इंगित किया जाए जो विभिन्न धर्मों में समान हों, ताकि उनकी बुनियाद पर वे मिल-जुलकर रह सकें और उनके बीच

इनसानी भाईचारा, अम्न व शान्ति और आपसी विश्वास पैदा हो।

(3) धर्मों को जैसा कि वे हैं, वैसा ही समझा और माना जाए। भेदभाव और तंगनज़री की बुनियाद पर किसी धर्म की वास्तविकता जानने और समझने की कोशिश न की जाए।

(4) संवाद का एक अहम और बुनियादी मक़सद यह होना चाहिए कि ईश्वर ने इनसानियत की शुरुआत में जो हिदायत व रहनुमाई प्रदान की थी, उसकी खोज की जाए। ईश्वर ने बन्दों की हिदायत व रहनुमाई के लिए नबियों एवं पैग़म्बरों का जो सिलसिला शुरू किया था, वह आदम (अलैहि०) से शुरू होकर आख़िरी पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) पर ख़त्म हुआ। इन तमाम नबियों और पैग़म्बरों ने जो शिक्षाएँ, संदेश और हिदायतें इनसानों को दीं, उसे जानने की कोशिश करना हरेक इनसान की ज़िम्मेदारी है। ऐसा करना मानव-कल्याण एवं मुक्ति के लिए ज़रूरी है। यद्यपि पैग़म्बरों और नबियों की जीवनी और उनपर अवतरित की गई किताबें सुरक्षित नहीं रहीं, लेकिन आख़िरी पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) पर अवतरित होनेवाली किताब 'क़ुरआन मजीद' सुरक्षित है, और आप (सल्ल०) की जीवनी भी पूरी तरह सुरक्षित है।

(5) धर्म के नाम पर अनुचित घृणा और शत्रुता की समाप्ति और सांस्कृतिक आक्रामकता से धार्मिक समुदायों की सुरक्षा भी ऐसे संवादों या सम्मेलनों के उद्देश्यों में शामिल है। अतएव एक मिले-जुले समाज में जहाँ विभिन्न धर्मों एवं संस्कृति के लोग रहते हों, वहाँ एक-दूसरे के धर्मों एवं आस्थाओं का सम्मान और इनसानी भाईचारे के साथ रहकर ही शान्ति एवं विकास संभव है।

धार्मिक उदारता

'सभी धर्म समान हैं' पर विश्वास करनेवालों के नज़दीक धार्मिक उदारता के लिए ज़रूरी है कि सभी धर्मों का हक़ पर होना स्वीकार किया जाए। उनका विचार है कि किसी एक धर्म को सच्चा क़रार देकर शेष धर्मों को सही न समझना वास्तव में धार्मिक उदारता (रवादारी) का न होना है।

परन्तु उदारता का यह अर्थ सही नहीं है। उदारता का यह मतलब नहीं है कि कोई किसी धर्म को बुद्धि, तर्क, तत्वदर्शिता एवं दूरदर्शिता के आधार पर सही न समझता हो, परन्तु केवल इसलिए कि दूसरे नाराज़ होंगे, उसे सही कहे। इससे तो ग़लत और सही एक ही सतह पर आ जाएँगे। इसे तो किसी भी दृष्टि से बुद्धि-संगत और उचित आचरण नहीं कहा जा सकता। इसमें सच्चाई की खोज करने, और उसे पाने के बाद कल्याण, सफलता एवं मुक्ति के लिए अपनाने की सम्भावना समाप्त हो जाती है।

उदारता का सही अर्थ यह है कि आदमी अपने धर्म को सही और सच्चा मानने के बावजूद दूसरे धर्मों को सहन करे, यद्यपि वह उसको सही न समझता हो। उनकी धार्मिक भावनाओं को ठेस न पहुँचाए। उनके धार्मिक महापुरुषों और पूजा-स्थलों का सम्मान करे। दलील और तर्क की बुनियाद पर दूसरे धर्म के माननेवालों से समझने और समझाने का सिलसिला जारी रखे, ताकि सच्चाई निखर कर सामने आए। लेकिन अपने धर्म के हक़ पर होने के दावे की बुनियाद पर दूसरों से नाहक़ लड़ाई-झगड़ा न करे।

उदारता का अर्थ यह भी है कि अपने धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए धौंस, धांधली, ज़ोर-ज़बरजस्ती या लोभ-लालच का रवैया न अपनाए। इनसानों से अनुचित घृणा की कोई मुहिम न चलाए। हरेक व्यक्ति का यह मौलिक अधिकार स्वीकार करे कि वह जिस धर्म या आस्था पर अपनी स्वेच्छा से चलना चाहे, उसे यह अधिकार एवं स्वतंत्रता प्राप्त हो। यह अधिकार तो ईश्वर का दिया हुआ है, उसे किसी भी तरह से छीन लेने का अधिकार किसी को प्राप्त नहीं है।

उदारता का यही अर्थ और भाव यदि धर्मावलम्बियों के बीच स्वीकार किया जाए तो धार्मिक टकराव (Religious Conflict) और धार्मिक आक्रामकता (Religious Animosity) उत्पन्न नहीं हो सकती। हम देखते हैं कि धर्म का नाम लेकर कुछ चालाक लोग सत्ता के मोह में धार्मिक समुदायों को आपस में लड़ाने की भरपूर कोशिश करते हैं। आम तौर पर लोग उनकी वास्तविकता से अवगत हैं और इस तरह की कोशिशों को सख़्त नापसन्द करते हैं। हमारे

देश में इनसान आम तौर पर प्यार-मुहब्बत, भाईचारा, अमून व शान्ति के साथ आपस में मिल-जुलकर रहना पसन्द करते हैं।

उदारता (रवादारी) की इस्लामी धारणा प्रस्तुत करते हुए मौलाना सैयद अबुल-आला मौदूदी (रह०) लिखते हैं—

"आम तौर से लोग इस ग़लतफ़हमी के शिकार हैं कि दस भिन्न-भिन्न विचार रखनेवाले व्यक्तियों के भिन्न-भिन्न और विपरीत विचारों को सही कहना उदारता है। जबकि यह वास्तव में उदारता नहीं, बल्कि पूर्णरूप से कपटाचार और दिखावा है। उदारता का अर्थ यह है कि जिन लोगों की आस्थाएँ और कर्म हमारे नज़दीक ग़लत हैं, उनको हम सहन करें। उनकी भावनाओं का आदर करके उनपर ऐसी आलोचना न करें जो उनको कष्ट पहुँचानेवाली हों और उन्हें उनकी आस्थाओं से हटाने या उनके अमल से रोकने के लिए ज़ोर-ज़बरजस्ती का तरीक़ा न अपनाएँ। इस प्रकार की सहनशीलता और इस तरीक़े से लोगों को आस्था एवं अमल की आज़ादी देना, न केवल एक अच्छा और प्रशंसीय कार्य है, बल्कि विभिन्न विचार रखनेवाले समुदायों में सद्‌भाव एवं शान्ति बनाए रखने के लिए ज़रूरी है। लेकिन यदि हम ख़ुद एक आस्था (अक़ीदा) रखने के बावजूद केवल दूसरों को ख़ुश करने के लिए उनकी विभिन्न आस्थाओं की पुष्टि करें और ख़ुद एक दस्तूर का पालन करते हुए दूसरे विभिन्न दस्तूरों का अनुसरण करनेवालों से कहें कि आप सब लोग सच्चे हैं तो इस दिखावे की अभिव्यक्ति को किसी प्रकार उदारता नहीं कहा जा सकता। किसी मस्लहत से चुप रह जाना और जान-बूझकर झूठ बोलने में आख़िर कुछ तो फ़र्क़ होना चाहिए। सही उदारता (रवादारी) वह है जिसकी शिक्षा इस्लाम ने हमको दी है। हमसे कहा गया है—

> "वे लोग ईश्वर को छोड़कर जिन दूसरे उपास्यों को पुकारते हैं, उनको बुरा न कहो, क्योंकि उसके उत्तर में नासमझी में आकर वे ईश्वर को गालियाँ देंगे। हमने इसी प्रकार हर क़ौम (समुदाय) के लिए उसके अपने अमल को ख़ुशनुमा बना दिया है। फिर उन सबको अपने रब की ओर वापस जाना है, वहाँ उनका रब उन्हें

बता देगा कि उन्होंने कैसे अमल किए।"

(क़ुरआन, सूरा-6 अनआम, आयत-108)

यही वह उदारता है जो एक हक़परस्त, सत्यप्रिय और सद्‌बुद्धि रखनेवाला व्यक्ति अपना सकता है। वह जिस आस्था एवं धर्म को सही समझता है, उसपर सख़्ती के साथ क़ायम रहेगा। अपने अक़ीदे का साफ़-साफ़ इज़हार और एलान करेगा। दूसरों को इस अक़ीदे (आस्था) की ओर दावत भी देगा, परन्तु किसी का दिल न दुखाएगा। किसी को अपशब्द न कहेगा, किसी की आस्था पर हमला न करेगा, किसी की उपासना (इबादत) में बाधा नहीं डालेगा, किसी को ज़बरजस्ती अपने धर्म में लाने का प्रयास नहीं करेगा। बाक़ी हक़ (सत्य) को हक़ जानते हुए हक़ न कहना, या बातिल (असत्य) को बातिल जानते हुए हक़ कह देना, कदापि किसी सच्चे इनसान का काम नहीं हो सकता और विशेषकर किसी को ख़ुश करने के लिए ऐसा करना अत्यन्त घिनौने प्रकार की चापलूसी है। ऐसी चापलूसी सिर्फ़ नैतिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि उस उद्देश्य में भी सफल नहीं होती, जिसके लिए इनसान अपने आप को इस निचले स्तर तक गिराता है।"

(तफ़हीमात, जिल्द-1, पृष्ठ-114 से 117)

—:—